जुलाई-2015 ◆ वर्ष 4 ◆ अंक 2 ◆ उदयपुर

ओ३म्

सत्यार्थ सौरभ

जुलाई-२०१५

नयनाभिराम दृश्य बिखरे हैं,
सृष्टि में सर्वत्र निहार।
आश्चर्यचकित बुद्धि कह उठती,
अद्भुत ! कौन है ये चित्रकार।
एक मात्र वह प्रभु रचयिता,
'सत्यार्थप्रकाश' करे स्वीकार।।

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति को समर्पित

श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास
नवलखा महल परिसर, गुलाब बाग, महर्षि दयानन्द मार्ग,
उदयपुर-313001 (राज.)

₹१० ४३

लाजवाब खाना!
एम.डी.एच. मसाले
हैं ना!
MDH
मसाले
असली मसाले सच-सच
Garam masala
Sambhar masala
Chunky Chat masala
Shahi Paneer masala
MDH DEGGI MIRCH
CHILLI POWDER
Dal Makhani masala
Kitchen King
Chana masala
Pav Bhaji masala
Peacock Kasoori Methi
महाशियाँ दी हट्टी (प्रा०) लिमिटेड
9/44, कीर्ति नगर, नई दिल्ली-110015
Website : www.mdhspices.com
ESTD. 1919

सत्यार्थ प्रकाश की शिक्षाओं को अपने आँचल में समेटे, सम्पूर्ण परिवार के लिए, हर आयु समूह के लिए, पठनीय और समर्पित

न्यास का मासिक मुखपत्र

सत्यार्थ सौरभ

प्रमुख संरक्षक - सत्यार्थ सौरभ

महाशय धर्मपाल जी (एम.डी.एच.)
डॉ. सुखदेव चन्द सोनी (अमेरिका)

परामर्शदाता संपादक मण्डल

डॉ. महावीर मीमांसक
आचार्य वेदप्रकाश श्रोत्रिय
डॉ. ज्वलंत कुमार शास्त्री
डॉ.सोमदेव शास्त्री
डॉ. रघुवीर वेदालंकार
आचार्य वेदप्रिय शास्त्री

सम्पादक

अशोक आर्य

प्रबन्ध सम्पादक

भवानी दास आर्य

प्रबन्ध सहयोग

नवनीत आर्य (मो.9314535379)

व्यवस्थापक

सुरेश पाटोदी (मो.9829063110)

सहयोग ◆ भारत	विदेश
संरक्षक - ११००० रु.	$ 1000
आजीवन - १००० रु.	$ 250
पंचवर्षीय - ४०० रु.	$ 100
वार्षिक - १०० रु.	$ 25
एक प्रति - १० रु.	$ 5

भुगतान राशि धनादेश/चैक/ड्राफ्ट
श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास
के पक्ष में बना न्यास के पते पर भेजें।
अथवा यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया
मेन ब्रांच टाऊन हॉल, उदयपुर
खाता संख्या : ३१०१०२०१००४१५१८
IFSC CODE- UBIN 0531014
MICR CODE- 313026001
में जमा करा अवश्य सूचित करें।

सृष्टि संवत्
१९६०८५३११६
द्वि. आषाढ कृष्ण षष्ठी
विक्रम संवत्
२०७२
दयानन्दाब्द
१९१

July- 2015

सत्यार्थ-सौरभ में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार सम्बन्धित लेखक के हैं। सम्पादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद के प्रतिवाद हेतु न्यायक्षेत्र उदयपुर ही होगा। आपत्ति की अवधि प्रकाशन तिथि से एक माह के भीतर ही मानी जायेगी।

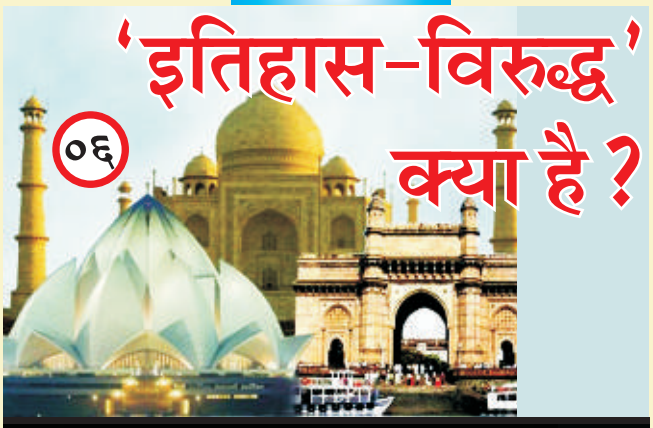

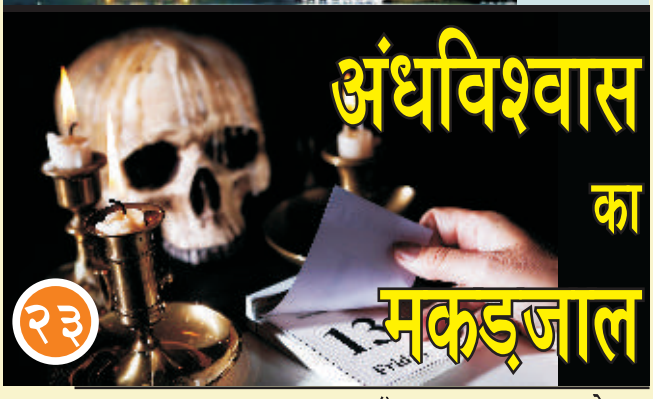

विज्ञापन शुल्क (प्रति अंक)

कवर २ व ३ (भीतरी आवरण) रंगीन
३५०० रु.

अन्दर पृष्ठ (श्वेत-श्याम)

पूरा पृष्ठ (श्वेत-श्याम)	२००० रु.
आधा पृष्ठ (श्वेत-श्याम)	१००० रु.
चौथाई पृष्ठ (श्वेत-श्याम)	७५० रु.

समाचार २५

हलचल २६

०४	वेद सुधा
०६	अध्यात्म का उत्तम ग्रन्थ 'गीता'
११	ऋषि दयानन्द का भाषागत अध्ययन
१२	८१वाँ जन्मदिवस- डॉ. सोनी
१३	परमात्मा का दर्शन ....
१६	मॉरीशस को सत्यार्थप्रकाश की देन
१९	परिणाम एवं पद्धति में प्रधान कौन?
२४	सत्यार्थप्रकाश पहेली-१८
२७	स्वास्थ्य-Health is Wealth
२८	कथा सरित
२९	सत्यार्थ-पीयूष- संन्यासाश्रम
३०	छोटी-छोटी बात समझ लो

स्वामी श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास
नवलखा महल, गुलाब बाग, उदयपुर

वर्ष - ४ अंक - २

मुद्रण द्वारा - चौधरी ऑफसेट, (प्रा.लि.)
११-१२, गुरु रामदास कॉलोनी, उदयपुर

प्रकाशक
श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास
नवलखा महल, गुलाब बाग, उदयपुर (राजस्थान) ३१३००१
(०२९४) २४१७६९४, ०९३१४५३५३७९, ०९८२९०६३११०
www.satyarthprakashnyas.org, E-mail : satyarthsandesh@gmail.com

स्वत्वाधिकारी, श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास, उदयपुर की ओर से प्रकाशक, मुद्रक अशोक कुमार आर्य द्वारा चौधरी ऑफसेट प्रा. लि., 11/12 गुरुरामदास कॉलोनी, उदयपुर से मुद्रित तथा कार्यालय श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास नवलखा महल गुलाबबाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, उदयपुर-313001 से प्रकाशित, सम्पादक-अशोक कुमार आर्य

ओ३म्

वेद सुधा

धरती पर स्वर्ग

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे।। - ऋग्वेद १०/८५/४२ **गतांक से आगे .....**

वात्सल्य की एकमात्र पूर्ति गृहस्थाश्रम में ही हो सकती है। बालक जब उत्पन्न होता है तो उसकी माँ घण्टों तक उसे निहारती रहती है। उसे घण्टों तक देखकर भी उसकी आँखों को तृप्ति नहीं मिलती। माँ-बाप दोनों ही नवजात शिशु को देख देखकर आँखों की प्यास बुझाते रहते हैं। शिशु के हाथों और पैरों की चेष्टाएँ, किलकारियाँ भरना, उठकर बैठने का प्रयास करना, धीरे-धीरे बैठना, मुस्कराना, घुटनों के बल रेंगना, खड़े होने का प्रयास करना, धीरे-धीरे चलने का अभ्यास, ध्वनियों और अक्षरों का उच्चारण, तोतली भाषा से बोलने का प्रयत्न-शिशु की ये सारी क्रियाएँ चेष्टाएँ माँ-बाप को आनन्दमग्न कर देती हैं और उनका मन मयूर उल्लास के साथ नाचने लगता है। इस आनन्दोल्लास की अनुभूति गृहस्थ ही कर सकते हैं। होटलों में खाने वाले और अस्पतालों में जाकर मरने वाले इस आनन्द की अनुभूति नहीं कर सकते। गृहस्थाश्रम मनुष्य जीवन में संयम लाता है। गृहस्थाश्रम मनुष्य जीवन को बन्धन में बाँधता है। इसके बिना मनुष्य का जीवन संयत और मर्यादित नहीं हो सकता। गृहस्थाश्रम मनुष्य के जीवन में नियमितता लाता है और उच्छृंखलता का ह्रास करता है। आप एक विवाहित और अविवाहित व्यक्ति के जीवन में इस अन्तर के दर्शन कर सकते हैं। गृहस्थ का जीवन नियमबद्ध होता है। उसका प्रातः निश्चित समय पर उठना, नैत्यिक आवश्यकताओं से निवृत्त होना, आजीविका के लिए जाना, निश्चित समय पर घर लौटना, बच्चों में बैठना, घर गृहस्थ के अन्य कार्यों को करना, निश्चित समय पर सोना-उसके ये सब क्रियाकलाप निश्चित, नियमित और निर्धारित होते हैं। इसके विपरीत आप उस व्यकित के जीवन पर दृष्टिपात करें, जो गृहस्थ के बन्धन से रहित है, तो आपको उसके जीवन में आजीविका के साधन की नियमितता को छोड़कर, दिनचर्या के अन्य किसी भी अंग में नियमितता के दर्शन प्रायः नहीं होंगे।

काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार का नियंत्रण एवं परीक्षण जितना गृहस्थाश्रम में हो पाता है उतना वानप्रस्थ और संन्यास में नहीं हो पाता। इन पाँच विकारों के परीक्षण के अवसर गृहस्थ में मिलते ही रहते हैं। इन अवसरों के कारण एक जागरूक व्यक्ति अपने आपको देख सकता है कि वह कहाँ खड़ा है? साधन उपलब्ध न होने पर संयम इतना गौरवशाली नहीं होता, जितना कि साधन होने पर वह गौरवशाली हो जाता है। आँखें होने पर किसी स्त्री को वासनात्मक दृष्टि से न देखना ही वास्तविक संयम का परिचायक है। आँखें फोड़ लेने पर आँखों के संयम का कोई अर्थ नहीं रहता। वास्तव में वे ही सच्चे धीर पुरुष हैं जो विकारों के सम्मुख होते हुए भी विकारग्रस्त नहीं होते।

गृहस्थाश्रम का एक और बड़ा सौन्दर्य यह है कि इसमें व्यक्ति शारीरिकता से आत्मिकता की ओर अग्रसर होता है। गृहस्थाश्रम का आरम्भ यौवन, सौन्दर्य और आकर्षण से होता है। ये तीनों बातें शरीर से संबंधित हैं, परन्तु एक ऐसा समय आता है जब वृद्धावस्था में स्त्री अथवा पुरुष बीमार है तब उनमें से एक दूसरे के मल मूत्र को उठाने में भी किसी प्रकार की घृणा का अनुभव नहीं करता। घृणा का यह अभाव आत्मिक सौन्दर्य का सूचक है। शारीरिक सौन्दर्य का आत्मिक सौन्दर्य में बदल जाना गृहस्थाश्रम की एक अनुपम विशेषता है।

नयेपन की बलवती इच्छा को लेकर और व्यक्तिवाद का सहारा लेकर जिन देशों ने परिवार व्यवस्था को ही नष्ट कर दिया है, उन देशों ने इस आश्रम की पवित्रता, महत्ता और गौरव को नहीं समझा। गृहस्थाश्रम की महत्ता को नष्ट करने वाले ऐसे ही व्यक्तियों के विषय में एक कवि ने

कहा है-

हुए इस कदर मुहज्जब, कभी घर का मुँह न देखा।
कटी उम्र होटलों में, मरे अस्पताल जाकर।।

ऐसे व्यक्ति गृहस्थ के आनन्द को नहीं समझ सकते, परन्तु वैदिक मनीषियों ने वेद के महत्व को जो कुछ समझा, उसे संस्कृत के एक कवि ने अपने शब्दों में छन्दोबद्ध किया है-

सानन्दं सदनं सुताश्च सुधियः कान्ता मनोहारिणी
संमित्रं सुधनं स्वयोषिति रतिः सेवारताः सेवकाः।
आतिथ्यं सुरपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे
साधोः संग उपासना च सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः।

अर्थात् आनन्दपूर्ण घर, बुद्धिमान पुत्र, मन को लुभानेवाली स्त्री, अच्छे मित्र, पवित्र धन, स्वपत्नी से प्रेम, सेवा करने वाले नौकर, अतिथि-सत्कार, प्रतिदिन देवपूजन अर्थात् यज्ञ, घर में मीठे अन्न व मीठा जल-पान, साधु पुरुषों का संग और निरन्तर उपासना जिस गृहस्थ में होते हैं, वह गृहस्थाश्रम धन्य है। **क्रमशः .....**

- प्रो. रामविचार एम. ए.
(साभार- वेद संदेश)

नवलखा महल में नवनिर्मित ''आर्यावर्त्त चित्रदीर्घा'' एवं सत्यार्थ प्रकाश स्तम्भ के बारे में दर्शकों के विचार

मुझे गर्व है अपनी मातृभूमि पर, लेकिन स्वामी दयानन्द जैसे लोगों पर ज्यादा गर्व है। उन्होंने हमारी संस्कृति को बचाने का सम्पूर्ण प्रयास किया। मेरा अपना व्यक्तिगत अनुभव है हमें ऐसे श्रेष्ठ कृत और कृतियों को अपने भविष्य के लिए बचा के रखना चाहिए। जो कि इस पवित्र स्थल नवलखा महल आकर मुझे अनुभव हुआ। - प्रदीप खण्डूडी, देहरादून

सर्वप्रथम मेरा सौभाग्य है जो महर्षि दयानन्द जी की इस पुण्य कर्मस्थली पर आने का मौका मिला। यहाँ आकर काफी ऐतिहासिक जानकारियाँ मिलीं। स्वामी जी का जीवन दर्शन बहुत ही रोमांचित एवं अच्छे तरीके से दर्शाया गया है। यहाँ की व्यवस्था के लिए व्यवस्थापक महोदय को बहुत-बहुत धन्यवाद एवं यहाँ के सभी कर्मचारी धन्यवाद के पात्र हैं। - दीपिका, दिल्ली

संरक्षक मण्डल - सत्यार्थ सौरभ (₹ ११,०००)

स्वामी (डॉ.) ओमानन्द सरस्वती, श्रीमान् आनन्द कुमार आर्य, श्री आर.डी. गुप्त, श्री भवानी दास आर्य, श्री सुरेश चन्द्र अग्रवाल, श्री रतिराम शर्मा, श्री दीनदयाल गुप्त, श्री बी.एल. अग्रवाल, श्री कै. देवरत्न आर्य, श्री चन्दूलाल अग्रवाल, श्री मिठाईलाल सिंह, श्री नारायण लाल मित्तल, श्री सुधाकर पीयूष,श्रीमती शारदा गुप्ता, आर्य परिवार संस्था कोटा, श्रीमती आभाआर्या, गुप्त दान दिल्ली, आर्यसमाज गाँधीधाम, गुप्तदान उदयपुर, श्री राजकुमार गुप्ता एवं सरला गुप्ता, श्री मोती लाल आर्य, श्री लक्ष्मण सराफ, श्रीमती पुष्पा गुप्ता, श्री जयदेव आर्य, श्री श्रवण कुमार गुप्ता, श्रीमती सरोज वर्मा, श्री विवेक बंसल, श्री दीपचंद आर्य, श्री एम.पी. सिंह, प्रो. आर.के.एरन, श्री खुशहालचन्द आर्य, श्री विजय तायलिया, श्री वीरेन्द्र मित्तल, स्वामी (डॉ.) आर्येशानन्द सरस्वती, स्वामी प्रवासानन्द सरस्वती, स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती, श्री राव हरिश्चन्द्र आर्य, श्री भारतभूषण गुप्ता, श्री कृष्ण चौपड़ा, श्री रामप्रकाश छाबड़ा, श्री विकास गुप्ता, श्री एम. विजेन्द्र कुमार टाक, श्री नरेश कुमार राणा, डॉ.मोतीलाल शर्मा, डी.ए.वी. एकेडमी, टाण्डा, श्री प्रधान जी, मध्यभारतीय आ. प्र. सभा, श्री रघुनाथ मित्तल, मिश्रीलाल आर्य कन्या इण्टर कॉलेज, टाण्डा, श्री प्रह्लादकृष्ण एवं श्रीमती प्रभा भार्गव श्री लोकेश चन्द्र टांक, श्रीमती गायत्री पंवार, डॉ. वेद प्रकाश गुप्ता, श्री वीरमुखी, डॉ. अमृतलाल तापड़िया, आर्य समाज हिरणमगरी, उदयपुर, श्री सुरेशपाल, यू.एस.ए., श्री राजेन्द्र कुमार सक्सेना, कोटा, श्रीमती सुमन सूद, कन्डा घाट (सोलन), माता शीला सेठी, न्यूजर्सी, डॉ. एस. के. माहेश्वरी, उदयपुर, श्री राजेश तिवारी (शिक्षक), ग्वालियर, श्रीमती सविता सेठी, चण्डीगढ़, डॉ. पूर्णसिंह डबास, नई दिल्ली, श्री बृज वधवा, अम्बाला शहर

आत्म निवेदन

'इतिहास-विरुद्ध' क्या है ?

गत दिनों शंकराचार्य जी ने एक बयान दिया तो मीडिया पर कोहराम मच गया। शंकराचार्य जी का कथन था कि विश्व के आठ आश्चर्यों में सम्मिलित ताजमहल वस्तुतः तेजोमहालय था जिसे जयपुर नरेश से शाहजहाँ ने लिया तथा उसमें कुछ परिवर्तन करा अपने नाम से मशहूर किया , यहाँ अग्रेश्वर महादेव के नाम से एक शिव मंदिर भी था। इस बयान पर एक न्यूज चेनल के सम्पादक का कथन था कि बिना किसी प्रमाण के इस तरह के बयान क्यों दिए जायँ। वे बड़े ही उत्तेजित थे तथा शंकराचार्य जी पर 'इतिहास-विरुद्ध' कथन करने का आरोप लगा रहे थे। ऐसा लगता है कि एंकर महोदय ने अपना होमवर्क ठीक से नहीं किया वरन् उन्हें पता होता कि केवल डा. पी एन ओक ही नहीं अन्य कई इतिहासकारों ने ऐतिहासिक प्रमाणों, पुरातात्विक प्रमाणों को प्रस्तुत कर बहुत मजबूत पक्ष इस संदर्भ में यह प्रमाणित करने हेतु रखा है कि ताजमहल एक हिन्दू मंदिर था। उनके द्वारा दिए अनेक प्रमाणों में से कुछ हम संकेत रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं।

ताजमहल के केन्द्रीय भवन की चोटी पर जो चिह्न है वह जिसे लोग चाँद तारा समझते हैं वह एक कलश और उसके ऊपर

आम्र की पत्तियाँ हैं और सबसे ऊपर नारियल टिका है। जो त्रिशूल है जिस पर शाहजहाँ द्वारा अल्लाह गुदवा दिया है। इसका क्लोजप देखने पर यह बिलकुल साफ दिखायी देता है जिसे नकारा नहीं जा सकता। यह चिह्न भी अष्ट धातु का बना हुआ है। परिसर में अष्टकोणीय टावर हैं। ये सब मुगल शैली के विपरीत जाते हैं। ताजमहल में जितना संगमरमर लगा है वह खरीदा गया इसका कोई सबूत दरबारी हिसाब-किताब में नहीं है। राजा जयसिंह से संगमरमर तथा कारीगर माँगने का जिक्र आता है पर वह इतना कम था कि उससे ताजमहल का निर्माण नही किया जा सकता था। ताजमहल में एक शानदार नक्कारखाना है। अगर वहाँ मस्जिद होती जैसा कि कहा जाता है तो वहाँ मुस्लिम परम्पराओं के अनुसार नक्कारखाना होने का प्रश्न ही नहीं होता।

ताजमहल में यमुना की ओर से पता चलता है सफेद मार्बल के अतिरिक्त लाल पत्थर की दो निचली मंजिल हैं। पुरातत्वविद मानते हैं कि इसमें २२ कमरे बन्द हैं जिन्हें अगर खुलवाया जाय तो सत्य इतिहास सामने आ जाय। पर आज नेताओं ने देश की स्थिति ऐसी बना दी है कि इनकी खुदाई को मुस्लिम विरोधी माना जाता है अतः हर सरकार को डर है, कोई इस ओर कदम नहीं बढ़ाना चाहता। जिस देश में एक स्वप्न के आधार पर सरकार की ओर से खुदाई कराई जाती है और देश पूरे विश्व में हँसी का पात्र बन जाता है वहीं ठोस साक्ष्य होते हुए एक बहुत बड़े सत्य को सामने लाने से बचा जा रहा है। पहिले एक अदालत ने याचिका खारिज कर दी थी अब पुनः एक अदालत में इस खुदाई हेतु याचिका लगायी गयी है। क्या होता है इसकी प्रतीक्षा रहेगी। उपरोक्त प्रकाश में स्थिति यह है ताजमहल के निर्माण के बारे में इतिहासकारों के दो पक्ष हैं। एक यह कि ताजमहल शाहजहाँ ने बनवाया था दूसरा यह कि यह हिन्दू नरेश का था। कोई लेखक या वक्ता एक पक्ष का समर्थन करते हुए लेखन या कथन करता है तो वह समीक्ष्य तो हो सकता है पर उसे 'इतिहास-विरुद्ध' कहना समीचीन नहीं, क्योंकि वह निराधार नहीं है।

यह संक्षिप्त विवरण इसलिए दिया है कि कई बार यह आवश्यक नहीं कि प्रचलित धारणा सत्य ही हो ।

स्पष्टतः उन लेखकों को दोषी नहीं कहा जा सकता जो प्रचलित तथ्य को ही सत्य मानकर अपनी रचनाओं में उसी को उद्धृत करते हैं परन्तु यह भी है कि जब ठोस आधारों पर संकेत मिलते हैं तो उसकी खोज अवश्य करनी चाहिए , इसी से सत्य का मार्ग प्रशस्त होता है।

प्रचलित धारणाएँ किस प्रकार दोहरायी जाकर गहराई से अपनी जड़ें जमा लेती हैं इसका एक उदाहरण देखिये- लार्ड मैकाले के बारे में कहा जाता है कि १ फरवरी १८३५ को उसने भारत की शिक्षा पद्धति के बारे में ब्रिटेन के हाउस आफ कामन्स में एक वक्तव्य दिया था -

'मैं भारतवर्ष में दूर-दूर तक घूमा हूँ , मैंने एक भी भिखारी नहीं देखा। एक भी चोर नहीं देखा। इस देश में जो चारित्रिक

उच्चता व योग्यता मैंने देखी है मेरा विश्वास है कि हम इस देश को जीत नहीं सकेंगे। इसके लिए हमें इस देश की रीढ़ अर्थात् यहाँ की आध्यात्मिक और सांस्कृतिक परम्परा को तोड़ना होगा। अतः मैं प्रस्ताव करता हूँ कि इस देश की प्राचीन शिक्षा पद्धति एवं संस्कृति को बदल दिया जाय जिससे हर भारतीय विदेशी भाषा अंग्रेजी तथा संस्कृति को अपने से उच्च मानने लगे और उनमें अपनी संस्कृति के प्रति हीन भावना उत्पन्न हो जाए तब वे वह हो जायेंगे जो हम चाहते हैं अर्थात् एक पूर्णतया आधीन राष्ट्र।'

उपरोक्त 'पैरा' सैकड़ों स्थानों पर उद्धृत हमने देखा है। किसी पुस्तक में इसे देख अन्य लेखक भी लिख ही देता है। यह तथ्य नहीं है यह तो कोई कल्पना नहीं कर सकता। अब हर कोई व्यक्ति ब्रिटिश संसद के Document तो नहीं देख सकता। ऐसी स्थिति में लेखक जो इस Quotation को दे रहा है, को गलत किसी भी दृष्टिकोण से नहीं कहा जा सकता। उसके सामने जो सूचना का स्रोत है उसमें यह है, वहीं से लेखक 'कोट' कर रहा है। कहा जाता है कि राष्ट्रपति मान्य ए. पी. जे. अब्दुल कलाम साहब ने भी इसे प्रयुक्त किया है। हाँ! भविष्य में शोध होने पर अन्यथा तथ्य सामने आने पर उस पर विचार करना तो बनता है पर इससे पूर्व प्रचलित धारणा के आधार पर जो विद्वान् अपने ग्रन्थों में उसे उद्धृत कर चुके हैं उन्हें कोसना, इतिहास विरुद्ध लेखक घोषित करना उचित नहीं।

उक्त वक्तव्य के सन्दर्भ में भी ऐसा ही कुछ है। कुछ लेखकों का शोध है कि उपरोक्त बात मैकाले ने कभी कही ही नहीं। उनका कहना है यह भाषण ब्रिटिश पार्लियामेन्ट की विषय वस्तु ही नहीं है अतः उसमे पढ़े जाने का प्रश्न ही नहीं था। यह शिक्षा के स्वरूप तथा उसपर किये जाने वाले खर्च के बाबत् था तथा इसे गवर्नर जनरल की कौंसिल में मैकाले द्वारा १ फरवरी १८३५ को पढ़ा गया। भाषण के तथ्य भी विपरीत थे अर्थात् भारतीयों की प्रशंसा में उद्धृत किये जाने वाले विचार मैकाले ने कभी नहीं कहे। वस्तुतः मैकाले फरवरी १८३५ में ब्रिटेन में था ही नहीं वह १८३४ से १८३८ तक भारत में था और गवर्नर जनरल की कौंसिल में विधिक सदस्य था। इनका कहना है कि मैकाले की राय भारत के बारे में इतनी उच्च कभी नहीं रही जैसी कि उद्धरण में व्यक्त की गयी है इसके विपरीत उसका मानना था कि भारत में अधिकांश लोग मूर्ख और बेईमान हैं जिसका कारण क्रूर शासक और मूर्तिपूजक धर्म है। यह एक अलग ही दृष्टिकोण है अतः जब तक स्पष्ट प्रमाणों के आधार पर कोई एक धारणा सिद्ध नहीं हो जाती तब तक लेखकगण जब भी इस बारे में लिखेंगे वे स्वमति के आधार पर कोई भी पक्ष उद्धृत करेंगे तो उन्हें 'तथ्य-विरुद्ध-लेखन' का या 'तथ्य-विहीन-कथन' का अपराधी नहीं बनाया जा सकता।

वस्तुतः इतिहास का अर्थ ही यह बताया जाता है कि जो निश्चय से हुआ हो। पर हम सोचते हैं कि क्या यह सदा सर्वदा संभव है कि बिना किसी संदेह के निश्चयात्मक कथन किया जा सके। यह निश्चय है कि शोध से ही सत्य समक्ष आ सकता है। परन्तु कई बार घटनाओं का वर्णन पूर्वाग्रह युक्त हो स्वपक्ष को प्रमाणित करने के लिए किया जाता है। ऐसा व्यक्ति दूसरे प्रमाणों को अनदेखा कर देता है। दूसरे हम यह भी देखते हैं कि शोध के परिणाम बदलते रहते हैं। पहले चन्द्रमा पर जल के संकेत भी हैं ऐसा वैज्ञानिक नहीं मानते थे। तत्समय में महर्षि दयानन्द के इस कथन कि 'अन्य लोकों पर भी सृष्टि है', की कुछ लोग आलोचना करते थे। आज निरन्तर हो रहे शोधों के फलस्वरूप अन्य लोकों में बस्ती बनाने की योजनाएँ चल रहीं हैं । इसी प्रकार एक सज्जन ने हमें लिखा कि वनस्पति विज्ञान से सम्बन्धित एक तथ्य ऋषि ने ठीक नहीं लिखा। हमारा उनसे यही निवेदन था कि वह दिन शीघ्र आवेगा जब शोध महर्षि-लिखित तथ्य को प्रमाणित करेंगे क्योंकि शोधों के परिणाम बदलते रहते हैं। फिर दूसरी बात है कि यह तथ्य लिखते समय ऋषि के समक्ष क्या स्रोत रहे होंगे यह नहीं कहा जा सकता पर यह निश्चय है कि अपने ज्ञान के आधार पर उन्होंने सत्य ही लिखा होगा।

स्वामी दयानन्द ने व्यास ऋषि के पाताल में होने का वर्णन किया है, वहाँ उद्देश्य केवल द्वीप-द्वीपान्तरों की यात्रा तत्कालीन भारत में निषिद्ध नहीं थी, यह दिखलाना था। उदाहरण महाभारत से दिया।

महाभारत में ही अर्जुन द्वारा महर्षि उद्दालक को पाताल से लाने का वर्णन मिलता है, जब अर्जुन आदि का यूरोप-पाताल जाना प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित है तो व्यास जी क्यों नहीं आ-जा सकते। उस समय की भौगोलिक स्थिति समुद्र और स्थल की स्थिति आज से भिन्न थी। यह शोध का विषय अवश्य हो सकता है आलोचना का नहीं।

मेरु पर्वत की स्थिति अनेक विद्वानों ने उत्तरी ध्रुव को माना है। सम्मति इसके विपरीत हो सकती है पर कोई लेखक मेरु पर्वत को उत्तरी ध्रुव लिखता है तो आप उसे 'इतिहास-विरुद्ध' या 'भूगोल-विरुद्ध' नहीं कह सकते। इतिहास से सम्बंधित एक घटना स्मरण हो रही है। कौन बनेगा करोड़पति धारावाहिक से सभी पाठक परिचित होंगे। उसके सीजन ३ में १६ अप्रैल २००७ को एक प्रश्न आया था कि गीतगोविन्द के रचयिता जयदेव का जन्म कहाँ हुआ था। उसमें सही उत्तर के रूप में जयदेव को बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन का दरबारी कवि बताया गया। इस पर उड़ीसा के लोगों ने जयदेव को उड़ीसा का बताते हुए कड़ी आपत्ति दर्ज की और शो के होस्ट शाहरुख खान को झूठी अफवाह फैलाने वाला बताया। उड़ीसा सरकार ने भी इस पर कड़ी आपत्ति जतायी और शो के कर्त्ता-धर्त्ताओं से माफी माँगने को कहा। यह स्थिति तब है जबकि जयदेव के सम्बन्ध में अनेक साक्ष्य उपलब्ध हैं। यह मसला अभी तक निर्विवाद रूप से नहीं सुलझा है। एक जयदेव दक्षिण के भी हैं। तो वास्तविकता यह है कि ऐतिहासिक, भौगोलिक, आदि तथ्यों के सन्दर्भ में अनेक में विद्वानों में एकमत्य नहीं है। ऐसे में किस लेखक ने किस स्रोत से तथ्य उल्लिखित किया यह देखने का विषय हो जाता है , नुक्ताचीनी का नहीं। अनेक बार घटनाएँ जनमानस में इस प्रकार बद्धमूल हो जातीं हैं कि उद्धृत कर दी जाती हैं।

सीता स्वयंवर के अवसर पर रावण के आने की बात छोड़ भी दें तो इतना तो प्रायः सभी मानते हैं, कहते हैं, लिखते हैं कि धनुष भंग की घटना राजाओं की सभा में हुई थी और जब सभी राजा धनुष उठाने में असफल रहे थे तब श्रीराम ने धनुष भंग किया था। वाल्मीकि रामायण में केवल इतना उल्लेख है कि बहुत से राजा धनुष भंग के लिए प्रयास कर असफल रहे थे। जब श्री राम अयोध्या आये तब उन्होंने यह कार्य किया और सीता से उनका विवाह हुआ। वहाँ राजाओं से भरी सभा का कोई जिक्र नहीं है। ऐसी सभी बातों का ख्याल समालोचक को रखना चाहिए।

इतिहास की स्थिति तो यह है आर्यसमाज की स्थापना तिथि को लेकर भी विवाद है। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा अधिकृत मानली है, पर पंचमी विद्वानों द्वारा स्वीकृत है। महर्षि का अज्ञात जीवन अभी तक स्पष्ट नहीं है। योगी का आत्मचरित्र नाम से जो इतिहास सामने आया जिसमें इस काल में महर्षि द्वारा १८५७ की क्रान्ति में सक्रिय भूमिका निभाने की बात बलपूर्वक कही गयी है, को आर्य समाज के इतिहासकारों ने नकार दिया। स्वामी पूर्णानंद जी ने 'योगी का आत्मचरित्र एक षड्यंत्र है' नामक पुस्तक ही लिख दी। परन्तु तथ्य यह है कि आर्य समाज के रिसर्च स्कालर उस ढाई वर्ष के इतिहास को अभी तक खोज कर सामने नहीं रख पाए हैं, जो इतिहासविद् होने का दावा करते है उन्हें यह कार्य करना चाहिए।

आज तक सैंकड़ों इतिहासकार जोधा बाई को अकबर की पत्नी बताते रहे हैं अखबारों में यही छपता रहा है, विद्यालयों में यही पढ़ाया जाता है, छोटे परदे पर भी यही स्थिति है।

अतः किसी लेखक द्वारा इस तथ्य का उल्लेख 'इतिहास-विरुद्ध' कैसे कहा जावेगा बाबजूद इसके कि अकबरनामा में कहीं भी जोधाबाई का नामोल्लेख नहीं है बल्कि यह भी कि जहाँगीरनामा में जहाँगीर की बीबी का नाम जोधाबाई कहा गया है। इतिहास ऐसी विसंगतियों से भरा पड़ा है कि इसमें सत्य का चयन अत्यधिक कठिन है। परन्तु मुगलों तथा अंग्रेजों के प्रभाव में, पश्चात् तथाकथित धर्मनिरपेक्ष लोगों के प्रभाव में जो इतिहास लेखन हुआ है उसके तथ्यों को प्रस्तुत करने वाले लेखकों तथा वक्ताओं को 'इतिहास-विरुद्ध' भी कहना उतना ही कठिन है जितना कि इन तथ्यों के विपरीत प्रस्तुतियों को। अतएव 'इतिहास-विरुद्ध' का 'फतवा' आत्मसंयम की भी माँग करता है।

- अशोक आर्य
चलभाष- ०९३१४२३५१०१, ०९००१३३९८३६

व्यक्ति धर्म, राष्ट्र धर्म एवम् अध्यात्म का उत्तम ग्रन्थ "गीता"

लेखक - (स्मृतिशेष) प्रो. उमाकान्त उपाध्याय

श्री नरेन्द्र मोदी जी जापान की राजकीय यात्रा पर गए थे। इस यात्रा के कई आवश्यक निहितार्थ हैं। दोनों राष्ट्रों, भारत और जापान के बीच कई समझौते हुए। इन समझौतों का आयाम राजनयिक, सामरिक, आर्थिक और सांस्कृतिक होना अनिवार्य था। भारत और जापान के मध्य चीन जैसा विस्तारवादी, महत्वाकांक्षी, अपनी दादागिरी चलाने वाला राष्ट्र है। अपने सभी पड़ोसी देशों को अपने प्रभाव में दबाकर रखनेवाली चीन की नीति विश्वप्रसिद्ध है। भारत को सामरिक और आर्थिक दृष्टि से नीचा दिखाकर रखना चीन की विदेश नीति का आवश्यक अंग है। यहाँ हम भारत चीन के सम्बन्धों

पर चर्चा नहीं कर रहे हैं। यहाँ हमारा उद्देश्य केवल इतना-सा है कि चीन को यह विदित हो जाए कि भारत का जापान के साथ बहुआयामी समझौता हो चुका है। इससे संभव है कि चीन की आक्रामक नीतियों पर कुछ नियंत्रण हो सकता है। जापान के साथ भारत ने कई प्रकार के समझौते किये।

भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने जापान के सम्राट को विश्वविख्यात पुस्तक 'गीता' उपहार में दी। यह एक सूझ-बूझ का महत्वपूर्ण कार्य है। जापान भारत को अपनी धर्मभूमि मानकर बहुत आदर की दृष्टि से देखता है। जापान के धर्मगुरु गौतम बुद्ध को 'बोधगया' में धर्म बोध की प्राप्ति हुयी थी। सारनाथ में गौतम बुद्ध ने अपने धर्म का प्रचार करना आरम्भ किया था। बोधगया और सारनाथ, दोनों जापानियों के पवित्र तीर्थ स्थल हैं। हजारों-हजार जापानी पर्यटक प्रतिवर्ष इन दोनों तीर्थों की यात्रा के लिए भारतवर्ष आते हैं। इस दृष्टि से गीता का उपहार अपना सांस्कृतिक महत्व रखता है।

गीता में व्यक्तिधर्म और राष्ट्रधर्म

गीता का आरम्भ महाभारत के अद्वितीय योद्धा अर्जुन के विषाद से होता है। जब कौरव-पाण्डव दोनों दलों की सेनाएँ व्यूह बनाकर खड़ी हो गयीं तो अर्जुन ने अपना रथ दोनों सेनाओं के बीच खड़ा करने का अनुरोध श्रीकृष्ण से किया। अर्जुन ने देखा कि उसके सामने सगे-सम्बन्धी पितामह, गुरु, भाई, बन्धु सब मरने-मारने को उद्यत हैं। अर्जुन दोनों सेनाओं में सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर था। उसके पास पाशुपत और ऐन्द्रास्त्र आदि ऐसे ऐसे दिव्यास्त्र थे कि जिनका प्रतिरोध भीष्म, द्रोण, कर्ण किसी के वश में नहीं था। किन्तु अर्जुन स्वजनों के मोह में अपना व्यक्तिधर्म और राष्ट्रधर्म दोनों गँवा बैठा। वह भूल बैठा कि उसका व्यक्तिधर्म क्षत्रिय का है और राष्ट्रधर्म अन्यायी, आततायियों को मारकर न्याय की स्थापना करना है। वह कहता है -

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगः सुखानि च।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च॥ - गीता १.३३

अर्थात् हमें जिनके लिए राज्य, भोग और सुखादि अभीष्ट हैं, वे ही सब धन और जीवन की आशा को त्यागकर युद्ध में खड़े हैं। अर्जुन अपना व्यक्तिधर्म भी नष्ट कर बैठा था। यह महायोद्धा विचलित हो गया था। वह कहता है, मेरा शरीर ऐंठा जा रहा है, मुख सूख रहा है, शरीर काँप रहा है, मुझे पसीना छूट रहा है, रोयें खड़े हो गए हैं, धनुष मेरे हाथ से छूट

रहा है, चमड़ी जल रही है, मैं खड़ा नहीं हो पा रहा हूँ। मेरा मस्तिष्क घूम रहा है। नर्वसनेस का ऐसा सटीक वर्णन विश्व इतिहास में दुर्लभ है। स्मरण रखना चाहिए कि यह वही धनुर्धर अर्जुन है जिसने एक रथ से अकेले ही विराटनगर में कौरव सेना के सभी महारथियों को सेना समेत पराजित कर दिया था। इस प्रकार अर्जुन के विषाद में अर्जुन का व्यक्तिधर्म और राष्ट्रधर्म दोनों नष्ट हो गए थे।

श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हैं कि अर्जुन तुम पंडितों की भाषा बोल रहे हो किन्तु यह भूल रहे हो कि जीवात्मा अजर, अमर है। इसलिए जीवात्मा मरता नहीं है, मरता है केवल शरीर और जीवात्मा दूसरा जन्म ले लेता है –

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति।' – गीता २/१३

अर्थात् जैसे जीवात्मा की इस देह में बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही अन्य शरीर की प्राप्ति होती है, इस विषय में धीर पुरुष मोहित नहीं होता। और भी

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च। – गीता २/२७

श्रीकृष्ण कहते हैं कि अर्जुन युद्ध करके न्याय की स्थापना क्षत्रिय का धर्म है –

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धश्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते।। – गीता-२/३१

अर्थात् अपने क्षत्रिय धर्म को देखते हुए भी तुम्हें युद्ध से विचलित नहीं होना चाहिए। धर्मयुद्ध से बढ़कर क्षत्रिय का कोई और कर्त्तव्य कर्म नहीं है। यदि तुम युद्ध नहीं करोगे तो लोग यही कहेंगे कि अर्जुन युद्ध के भय से डर गया।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।। – गीता-२/३७

अर्थात् या तो तू युद्ध में मारा जाकर स्वर्ग को प्राप्त होगा अथवा संग्राम में जीतकर पृथ्वी का राज्य भोगेगा। इस कारण हे अर्जुन ! तू युद्ध के लिए निश्चय करके खड़ा हो जा। इस प्रकार गीता के उपदेश ने अर्जुन के व्यक्तिधर्म और राष्ट्रधर्म की रक्षा की है।

गीता अध्यात्म का ग्रन्थ

गीता में लगभग ६९९ श्लोक बताये जाते हैं। इनमें से संभवतः आधे से अधिक अध्यात्म की उन्नति से सम्बंधित हैं। हम इतने विशाल विशद् प्रसंग को इस छोटे से लेख में लिखने में असमर्थ हैं, फिर भी इतना तो कहना ही चाहते हैं कि प्राणायामपूर्वक ओंकार का जप, उसी की भावना करते रहना चाहिए। श्रीकृष्ण की सम्मति में यज्ञ, दान और तप मनीषियों को भी पवित्र करने वाले हैं अतः यज्ञ (सारे परमार्थकारी कर्म) दान (धन, अन्न, वस्त्र, विद्या आदि सभी कर्म) और तप (अपने कर्म को सत्यनिष्ठा से करना) आवश्यक हैं।

अध्यात्म की उन्नति में सबसे बड़ी बाधा मनोविकारों की है। मनोविकार – काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि सभी इन्द्रियों को प्रभावित करके मन को दबा लेते हैं और कभी मन में पैदा होकर इन्द्रियों को उत्तेजित कर देते हैं। कभी रसगुल्ले का स्वाद जीभ को प्रभावित करके मन पर अधिकार कर लेता है। कभी मन पर अधिकार करके जीभ को प्रभावित कर लेते हैं। इनमें काम (सेक्स) और क्रोध साथ-साथ रहते हैं तथा सबसे अधिक बलवान हैं। अर्जुन ने एक प्रश्न पूछा–

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः।। – गीता ३/३६

अर्थात् मनुष्य न चाहते हुए भी किसके द्वारा प्रेरित होकर पाप का आचरण करता है। श्रीकृष्ण उत्तर देते हैं –

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्।। – गीता ३/३७

अर्थात् यह काम (सेक्स) और क्रोध ही हैं जो भोगों से कभी तृप्त नहीं होते जैसे घी और काठ से अग्नि बढ़ती ही है उसी प्रकार यह काम भी भोगने से बढ़ता ही है। इस जीवन विनाश की प्रक्रिया गीता में निम्न प्रकार है–

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।। – गीता २/६२
क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।। – गीता ३/६३

मनुष्य विषयों का चिन्तन करने में आसक्त हो जाता है, उससे विषयों को भोगने की कामना उत्पन्न होती है। इसी में क्रोध स्थाई बन जाता है। काम और क्रोध से मोह पैदा हो जाता है। मोह के कारण ज्ञान-विज्ञान सब नष्ट हो जाते हैं और इसी से मनुष्य का बुद्धि-विवेक नष्ट हो जाता है और मनुष्य जीवन का नाश हो जाता है। अतः श्रीकृष्ण कहते हैं कि मनुष्य के इन्द्रिय, मन और बुद्धि में इस काम भावना का निवास हो जाता है इसलिए इन्द्रियों और मन का नियंत्रण करके इस ज्ञान-विज्ञान के विनाशक शत्रु 'काम' को मार डालना चाहिए।

ऋषि दयानन्द के साहित्य का भाषागत अध्ययन

डॉ. मंजुलता विद्यार्थी

ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों की भाषा खड़ी बोली हिन्दी है। ऋषि दयानन्द के हिन्दी रंगमंच पर आगमन के समय तक हिन्दी भाषा व हिन्दी गद्य का स्वरूप पूर्णतया निश्चित नहीं हुआ था। हिन्दी गद्य के स्वरूप निर्धारण तथा हिन्दी भाषा के स्वरूप को साहित्यिक स्तर और स्थिरता प्रदान करने में ऋषि दयानन्द के साहित्य की भाषागत विशेषताओं का अध्ययन प्रस्तुत आलेख का विषय है।

ऋषि दयानन्द की हिन्दी भाषा की निजी विशेषताएँ

तत्सम शब्दों के चयन की नीति- **ऋषि दयानन्द के समय तक हिन्दी भाषा का स्वरूप पूर्णतः स्थिर नहीं हुआ था, यह हम देख चुके हैं। राजा शिवप्रसाद उत्तरोत्तर उर्दू शब्दों का प्रयोग अधिकाधिक करने लगे थे। उन्होंने अपने अंग्रेजी साहबों को प्रसन्न करने के लिए अपनी हिन्दी भाषा को भी लाज छोड़कर उर्दू प्रचलित करने में बहुत उद्योग किया। (फ्रेडरिक पिंकोट)** (हिन्दी भाषा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृष्ठ २८)। **संस्कृत के अच्छे ज्ञाता होते हुए भी हिन्दी से संस्कृत और ब्रजभाषा के शब्दों को बहिष्कृत करने के लिए आतुर थे। इससे हिन्दीभाषा का स्वरूप उर्दू फारसी के प्रभाव से दब जाने की आशंका उत्पन्न हो गई थी। दूसरी ओर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, श्री प्रतापनारायण मिश्र जैसे विद्वान् तद्भव प्रधान भाषा के पक्षपाती थे। तद्भव शब्दों के स्थान भेद से अनेक रूप हो जाते हैं, इससे वर्तनी में अस्थिरता आने का भय था।** ऐसे समय में ऋषि दयानन्द ने भारतीय भाषाओं के मूल स्रोत संस्कृत के महत्व को पहचानकर तत्सम शब्दों के चयन की नीति अपनाई, **जिससे वर्तनी की स्थिरता बनी। हिन्दीतर, भारतीय भाषाएँ प्रायः संस्कृतनिष्ठ हैं। इसलिए हिन्दीतर प्रदेशों में तत्समप्रधान हिन्दी ही सरल प्रतीत होती है। वर्तनी की स्थिरता के लिए तथा हिन्दी भाषा के स्वरूप विस्तार के लिए संस्कृत शब्दों का प्रयोग ही उचित है। आज हिन्दी भाषा का विकास संस्कृतनिष्ठ भाषा के अनुसार ही हो रहा है। इस दृष्टि से हिन्दी भाषा के स्वरूप को साहित्यिक स्तर और स्थिरता प्रदान करने में ऋषि दयानन्द का प्रमुख हाथ है। हिन्दी के परवर्ती साहित्यकारों ने तद्भव प्रधान भाषा-शैली के स्थान पर तत्सम प्रधान भाषा-शैली को अपनाया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा अपनाये जाने वाले राज, बेर, बरस इत्यादि तद्भव शब्दों का स्थान राज्य, वार, वर्ष ने ले लिया है। श्री चन्द्रभानु सोनवणे के अनुसार-** स्वामी दयानन्द सरस्वती इसी तत्सम प्रधान भाषा शैली के प्रस्तोता और पुरोधा थे।' (हिन्दी गद्य साहित्य-डॉ. चन्द्रभानु सोनवणे, पृष्ठ २७२)।

ऋषि दयानन्द ने हिन्दी भाषा को राष्ट्रीय स्वरूप की दृष्टि से सजाया और सँवारा था। उनका कथन था कि 'मेरे नेत्र उस दिन को देखने के लिए आतुर हैं जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक एक ही भाषा को बोलने वा समझने वाले होंगे।' (श्रीमद्दयानन्द प्रकाश, स्वामी सत्यानन्द, पृष्ठ ३६५)। श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने भी लिखा है- 'उन्होंने (ऋषि दयानन्द ने) जैसा प्रयास भारत के कुलगत, वर्णगत, सम्प्रदायगत, शाखा-प्रशाखा भेद को छिन्न-भिन्न करके आर्य जाति के संगठन के निमित्त किया था, वैसा ही प्रबल परिश्रम उन्होंने इसके निमित्त भी किया था कि आर्यावर्त में आदि से अन्त तक एक भाषा प्रचलित हो जाए।' (दयानन्द दिव्य दर्शन, श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, पृष्ठ ५०-५१)। तत्सम शब्दों के चयन की नीति हिन्दी के राष्ट्रीय स्वरूप का आवश्यक अंग थी, क्योंकि पंजाबी, मराठी, गुजराती, बंगाली, उड़ीया, तेलगू, आसामी, कन्नड, तमिल, मलयालम आदि सभी प्रान्तीय भाषाओं में संस्कृत के शब्द पाये जाते हैं। श्री धर्मदेव विद्यावाचस्पति, विद्यामार्तण्ड ने लिखा है- 'भारत की राष्ट्रभाषा संस्कृतनिष्ठ हिन्दी और लिपि देवनागरी होनी चाहिए, इस विषय को अब प्रायः सभी प्रान्तों के निष्पक्षपात विचारक और नेता स्वीकार करने लगे हैं।' (हमारी राष्ट्रभाषा और लिपि, श्री धर्मदेव विद्यावाचस्पति पृष्ठ २५)। डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या का मत है कि 'अराष्ट्रीयता को रोकने प्रभावकारी साधन के तौर पर उन्होंने (ऋषि दयानन्द ने) संस्कृतनिष्ठ हिन्दी को अपनाया।' (भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, सुनीतिकुमार चाटर्ज्या पृष्ठ १६६)।

आर्यभाषा का प्रयोग- ऋषि दयानन्द ने अपने साहित्य में हिन्दी की जगह सर्वत्र आर्यभाषा का प्रयोग किया है। वे भारतवर्ष को आर्यावर्त और हिन्दुओं को आर्य कहते थे। इसलिए उन्होंने हिन्दी को आर्यभाषा अर्थात् समस्त आर्यावर्त में प्रचलित भाषा का नाम दिया था। श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के अनुसार ऋषि दयानन्द ने आर्यावर्त में आदि से अन्त तक एक भाषा के प्रचलन निमित्त प्रबल परिश्रम किया था और इसी उद्देश्य से उन्होंने हिन्दीभाषा को आर्यभाषा यानी पूरे आर्यावर्त में प्रचलित भाषा का नाम दिया था (दयानन्द दिव्य-दर्शन, श्री देवेन्द्र मुखोपाध्याय, पृष्ठ ५१.)। 'ऋषि दयानन्द आर्यावर्त की राष्ट्रभाषा के रूप में आर्यभाषा (हिन्दी) को आसीन कराना चाहते थे। इसके अतिरिक्त हिन्दी को आर्यभाषा नाम देकर उन्होंने उसके अर्थगाम्भीर्य को भी बढ़ाया (आर्यभाषा यानि भले लोगों की बोलचाल की भाषा, सभ्य, कुलीन और प्रगतिशील लोगों की भाषा) और साथ ही उसे भारत के अतीत की मुख्य सांस्कृतिक और साहित्यिक धारा से भी जोड़ दिया। प्राचीन भारतीय साहित्य में सर्वत्र आर्य शब्द का प्रयोग हुआ है, हिन्दी व

हिन्दू का वहाँ सर्वथा अभाव है। आर्यभाषा नामकरण के औचित्य को बताते हुए डॉ. भवानीलाल भारतीय ने लिखा है- 'स्वामी दयानन्द भारत की जनभाषा हिन्दी को 'आर्यभाषा' के नाम से अभिहित करते थे। इस नामकरण में उनका लक्ष्य हिन्दी को समग्र आर्यावर्त (भारतवर्ष) की एकमात्र प्रधान भाषा के रूप में स्वीकृति प्रदान कराना था। 'आर्य' शब्द अपनी गंभीर एवं उदात्त अर्थवत्ता के कारण ही सर्वस्वीकृत अभिधान है, इस प्रकार आर्यावर्तवासियों की भाषा को 'आर्यभाषा' कहना नितान्त समीचीन ही था।' (राष्ट्रभाषा हिन्दी को आर्य समाज की देन, डॉ. भवानीलाल भारतीय, स्मरणिका महाराष्ट्र प्रान्तीय प्रथम आर्य महासम्मेलन १९८२, पृ.३)।

आचार्य सत्यव्रत शर्मा 'अजय' का विचार है- 'स्वामी जी ने इस जम्बूद्वीप, भरतखण्ड, आर्यावर्त की पुनीत बोली या भाषा को 'आर्यभाषा' नाम से अभिहित किया है। सचमुच यदि स्वामी जी के दिए इस नाम को ही हम स्वीकार कर लें, तो हिन्दी, उर्दू, रेखता, हिन्दुस्तानी या खड़ी बोली अथवा नागरी आदि नामों का झगड़ा ही समाप्त हो जाए (दयानन्द और राष्ट्रभाषा हिन्दी (लेख) आचार्य सत्यव्रत शर्मा अजेय, विश्वज्योति (दयानन्द अंक) भाग २ जून-जुलाई अंक १९७५ पृ. १२५)।

आचार्य पद्मसिंह शर्मा ने 'हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी' पर बोलते हुए हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहबाद में कहा था- 'हिन्दी के अर्थ में आर्यभाषा शब्द का प्रचार और व्यवहार करने वालों में आर्य समाज के प्रवर्तक श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी प्रमुख हैं। पुराने ख्याल के कट्टर आर्य समाजी सज्जन आज भी इस शब्द के प्रचार के लिए तत्पर दिखाई देते हैं। गुरुकुलों के अधिवेशनों के जो भाषा सम्बन्धी परिषद् व सम्मेलन होते हैं, उनके नाम नागरी व हिन्दी सम्मेलन न होकर आर्यभाषा सम्मेलन रखे जाते हैं। आर्य समाजियों के अतिरिक्त भी कुछ लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यसेवी आर्यभाषा नाम के समर्थक और पोषक रहे हैं और हैं। (आचार्य पद्मसिंह शर्मा, व्यक्ति और साहित्य (द्वितीय खण्ड) सम्पादक- डॉ. बनारसीदास चतुर्वेदी तथा डॉ. विष्णुदत्त राकेश पृष्ठ-१२५.)।

श्री धीरेन्द्र वर्मा ने भी, 'मध्यदेशीय संस्कृति के अधिक निकट होने के कारण इस नाम को 'अधिक वैज्ञानिक' माना है।' (विचारधारा- श्री धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ- १८७.)। **क्रमशः .....**

- श्रुति-सौरभ
इंजीनियर्स कॉलोनी, धनवन्तरी नगर
उमरी, अकोला- ४४४००५

ओं समास्त्वाग्न ऋतवो वर्द्धयन्तु संवत्सराऽऋषयो यानि सत्या।
सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वाऽआ भाहि प्रदिशश्चतस्रः॥ यजुर्वेद २८/१

आप जियें हजारों साल साल के दिन हों पचास हजार

डॉ. सुखदेव चन्द सोनी
शिकागोलैण्ड (यू. एस. ए.)

सज्जनता तथा सौम्यता की प्रतिमूर्ति, निज जीवन की समस्त अर्जित क्षमताओं को मानवमात्र के कल्याणार्थ सदैव समर्पित करने वाले, सहस्रों परिवारों तथा व्यक्तियों को सतत् सम्बल प्रदान करने वाले, सात समन्दरपार शिकागो में 'ओ३म्' पताका को लहराने वाले, इस न्यास की रग-रग में संजीवनी का संचार करते रहने वाले न्यास के संरक्षक देवता स्वरूप आर्य-श्रेष्ठ डॉ. सुखदेव चन्द सोनी के ८१ वें जन्म दिवस (२३ जुलाई) पर न्यास के सभी न्यासीगण व सत्यार्थ सौरभ के पाठकगण डॉ. सोनी के निरामय दीर्घायुष्य के लिए परमपिता परमात्मा से विनयरत् हैं। प्रभुकृपा करें आपका आशीर्वाद, साहचर्य एवं मार्गदर्शन हम सभी को चिरकाल तक प्राप्त होता रहे।

परमात्मा का दर्शन किसी देवी देवता के रूप में नहीं होता

लेखक- श्री हरिशचन्द्र वर्मा 'वैदिक'

जो परमात्मा को देखना और समझना चाहते हैं, उन्हें सर्वप्रथम यम और नियमों का पालन करना चाहिए। योगाभ्यासी भी पहले इन्हीं नियमों को अपनाते हैं। योगशास्त्र में पाँच यम और पाँच नियम इस प्रकार हैं-

तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।
शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः॥

अहिंसा- मन, वाणी और क्रिया से किसी भी प्राणी को तकलीफ न देना।

सत्य- मन, वचन और क्रिया तीनों में सत्य के प्रतिष्ठित होने से योगदर्शन भाष्यकार व्यास के लेखानुसार योगी की वाणी अमोघ हो जाती है।

अस्तेय- मन, वाणी और क्रिया से किसी की भी चोरी न करना। बिना आज्ञा के किसी की भी कोई वस्तु न लेना, वह भले ही लेते हुए देख रहा हो, चोरी है। लोभी, रिश्वतखोर और मिलावट करने वाले ये सभी चोर हैं।

ब्रह्मचर्य- शरीर में उत्पन्न हुए रज-वीर्य की रक्षा करते हुए लोकोपकारक विद्याओं का अध्ययन करना। बड़े-बड़े ज्ञानी गुणी को कामवासना अन्धा बना देती है उससे दूर रहना है। अपरिग्रह- न्यायपूर्वक भोग करना, अन्यायपूर्वक धन का संग्रह करना दुःखकारक होता है।

नियम- अपने कर्म के फल से दुःखी न होना पड़े इसलिए योगी को नियमों का पालन करना चाहिए। वे नियम ये हैं-

शौच- बाह्य और अन्तःकरणों को शुद्ध रखना।

सन्तोष- पुरुषार्थ से जो कुछ प्राप्त हो, उससे अधिक की इच्छा न करना और अन्यों के धनादि को अपने लिए लोष्ठवत समझना।

तप- शीतोष्ण, सुख-दुःखादि को एक जैसा समझते हुए नियमित और संयमित जीवन व्यतीत करना।

स्वाध्याय- ओंकार का श्रद्धापूर्वक जप करना और वेद-उपनिषदादि उद्देश्य साधक ग्रन्थों का निरन्तर अध्ययन करना।

ईश्वरप्रणिधान- ईश्वर का प्रेम हृदय में रखते हुए और उसको अत्यन्त प्रिय परमगुरु समझते हुए अपने समस्त कर्मों को उसके अर्पण करना।

उसके पश्चात् प्रातःकाल जिस आसन में देर तक बैठा जा सके उसी आसन अथवा पद्मासन या स्वस्तिकासन में बैठकर (७० या ८० वर्ष वाले) पहले दीर्घ स्वासन करें, कम से कम १० दस बार (लम्बा श्वांस लें और छोड़ें) उसके पश्चात् लोहार की धौकनी की तरह कपालभांति कम से कम २५ या ५० बार करें, उसके पश्चात् नाड़ीशोधन- अनुलोम विलोम प्राणायाम १५ या २५ बार करें, उसके बाद रेचक, पूरक और कुम्भक प्राणायाम में पहले रेचक प्राणायाम को सिद्ध करें अर्थात् वायु को वेग से बाहर निकाल कर रोक दें, जब श्वांस लेना चाहें तो अन्दर लेकर पुनरपि वैसे ही करें और प्राणायाम (ओम् भूः, ओम भुवः, ओम् स्वः, ओम् महः, ओम् जनः, ओम् तपः, ओम् सत्यम्) मंत्रों के जप सहित करते रहें। यह क्रिया कम से कम ५ से ७ बार करें। इसके सिद्ध हो जाने से अन्य सभी प्राणायाम साध्य हो जाते हैं। जप और प्राणायाम की प्रत्येक क्रिया के साथ 'ओ३म्' का मानसिक जप किया जाता है। जितना ही अधिक जप किया जाता है उतनी ही अधिक कुम्भक की मात्रा बढ़ती जाती है। इस प्रकार प्राणायाम से जप और जप से प्राणायाम की उपयोगिता बढ़ती है। ओंकार का जप ही सर्वश्रेष्ठ जप है, इसीलिए योगाचार्य पतंजलि और इसीलिए वेद ने भी ओ३म् क्रतो स्मर (हे जीव! ओ३म् का स्मरण एवं जप कर) के द्वारा 'ओ३म्' का ही जप बताया है।

जब योगाभ्यासी प्राणायाम के पश्चात् शरीर के सात चक्र में से किसी एक, हृदय या भृकुटी में 'ओम्' प्रणव का एक मन से श्रद्धापूर्वक जप करने लगता है तब प्रयत्न करते रहने से मन चंचलता रहित होकर जहाँ ध्यान लगा रहता है वहाँ मन की सारी वृत्तियाँ उसके साथ एक हो जाती हैं। इस प्रकार जब ध्यान में मन स्थिर होने लगता है तब प्राण का भी स्तम्भन होने लगता है और जब दोनों शक्तियाँ आपस में मिलती हैं तब ऐश्वरी प्रकाश का उस एकाग्रता में अन्तर्चक्षु द्वारा दर्शन होने लगता है। उस रंगारंग प्रकाश को देखकर साधक को जो उस अवस्था में आनन्द प्राप्त होता है, वह भौतिक आनन्द से पृथक् होता है।

विशोका वा ज्योतिष्मती। - योगदर्शन १/३६

अर्थ- शोक से रहित और प्रकाश युक्त प्रवृत्ति उत्पन्न होकर मन की स्थिति को बाँधने वाली होती है।

व्याख्या- हृदय कमल या भृकुटि में जब प्राण धारण किया जाता है तब योगी की प्रकाश युक्त और प्रकाश के समान विस्तृत (संकोचरहित हो जाती है) उस (बुद्धि) में स्थिर होने से सूर्य, चन्द्र और मणियों के प्रकाश के समान जाज्वल्यमान ज्ञान प्राप्त होता है। इस अवस्था में उसकी दशा तरंग रहित महासागर के समान शान्त और निश्चल होती है और वह प्रभु प्रेम में मग्न रहने लगता है। इस प्रवृत्ति को प्रकाशयुक्ता ज्योतिष्मती प्रवृत्ति कहते हैं। ध्यानी उस अवस्था में उस प्रकाश में जितना ही आगे बढ़ता है उतना ही उसमें तीव्रता होने लगती है। हमारे आचार्य जी का कहना था कि जो ध्यान में प्रकाश का उद्भव होता है वह ईश्वरीय सृष्टि तत्वों के प्रकाश हैं जो साधक अपनी साधना द्वारा ध्यान की एकाग्रता के हो जाने से उसे दिखने लगता है।

ध्यान में अपनी तरफ से बनावटी किसी प्रकार की कोई कल्पना नहीं की जाती। अतः किसी देवी देवता की आकृति की कल्पना नहीं करनी चाहिए और न किसी बाह्य ध्वनि की तरफ ध्यान दिया जाता है। केवल उस प्रणव प्राणाधार का ही चिन्तन और जप करना है, क्योंकि वही हम सबका जीवनदाता सर्वदुःखनाशक और सुख का देने वाला है।

पतंजलि शास्त्र के अनुसार योग के आठ अंग होते हैं यथा-

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि। - योगदर्शन २/२९

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार-धारणा ध्यान और समाधि। इनमें से यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार ये योग के वहिरंग साधन हैं और धारणा, ध्यान अन्तरंग साधन हैं।

ध्यान- तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्। - योगदर्शन ३/२

अर्थ -उस धारणा में प्रत्यय ज्ञान का एकसा बना रहना ध्यान कहा जाता है।

व्याख्या- देश विशेष नाभि चक्रादि में चित्त का ठहराना धारणा कहा जाता है। यह चित्त का ठहराव जब स्थित हो जावे और ध्येय का ज्ञान एक जैसा बना रहे और दूसरा किसी प्रकार का ज्ञान चित्त में न आवे तो इस अवस्था का नाम ध्यान कहा जाता है।

समाधि- तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः। - योगदर्शन ३/३

अर्थ- उसी ध्यान में जब अर्थ ध्येय मात्र का प्रकाश रह जावे और ध्याता अपने रूप से शून्य सा हो जावे उसे समाधि कहेंगे।

व्याख्या- ध्यान और समाधि में अन्तर यह है कि ध्यान में ध्याता, ध्यान और ध्येय इन तीनों का ज्ञान योगी को रहता है परन्तु समाधि में अर्थ ध्येय मात्र का प्रकाश रह जाता है। ध्याता और ध्यान न रहते हों यह नहीं है, ये जरूर हैं परन्तु इनका स्वरूप शून्य-सा हो जाता है। ध्यान का ध्येय के स्वभाव का पूर्ण आवेश हो जाता है। इस आवेश का फल यह होता है कि ध्याता को अपनी सुध-बुध नहीं रहती और वह केवल ध्येय के प्रकाश में ही निमग्न और तल्लीन सा हो जाता है।

इसका भी साक्षात् अभ्यास प्राणायाम और जप के सिवा और कुछ नहीं है। एक घण्टा या उससे अधिक जब योगी बिना श्वांस लिए रहने लगता है तब समाधि अवस्था का प्रारम्भ हो जाता है। यही समाधि घण्टों ही नहीं रहती बल्कि दिनों और सप्ताहों तक पहुँचती है। महात्मा नारायण स्वामी योग रहस्य में लिखते हैं कि इसका अधिक वर्णन करना व्यर्थ है। उपनिषद् के शब्दों में इतना ही कह देना काफी है।

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयन्तदन्तःकरणेन गृह्यते।।
- मैत्रायणी उपनिषद ४/४/६

अर्थात् मलों के नष्ट होने पर समाधिस्थ होकर आत्मरत होने से जो आनन्द प्राप्त होता है उस परमात्मा के दर्शन को वाणी से नहीं कहा जा सकता, वह तो स्वयं अन्तःकरण से ग्रहण किया जाता है।

साधक ध्यानावस्था में यदि 'ओ३म्' ध्वनि को सुनना चाहे तो उसे वह गरगराता हुआ सुनाई देने लगता है। इससे भी मन में एकाग्रता बढ़ जाती है और आनन्द का अनुभव होने लगता है, परन्तु जहाँ मन विचलित हुआ कि वहाँ सूक्ष्म जगत् की क्रिया बन्द हो जाती है और योगाभ्यासी माया में आ जाता है। ध्यान की एकाग्रता से जब प्रकाश का उदय होने लगता है उसके लिए पूज्य आचार्य पंडित वीरसेन वेदश्रमी जी का कहना था कि भृकुटियाँ हृदय में प्रकाश को स्थिर कीजिए। उसमें 'ओ३म्' का जप कीजिए। प्रकाश उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होना चाहिए। अभ्यास पुनः प्रकाश के साथ 'ओ३म्' का नाद स्वतः सुनने का प्रयत्न करें। प्रकाश और नाद का यदि सतत् प्रवाह चलेगा तो आप आनन्द में अन्तर में लीन रहेंगे। श्वांस अपने आप रुका रहेगा तब श्वांस ध्यान मात्र से ही रुकेगा, ध्यान हटते ही चलने लगेगा। उस समय आपको जप करने की आवश्यकता नहीं। जिस प्रकार मधु मुँह में भरकर कोई बोलता नहीं उसके स्वाद लेने में मस्त रहता है और मुँह खोलने से मधु गिरने का भय रहता है, उसी प्रकार अन्तर की ध्वनि अनहद नाद को सुनने में चित्त लगेगा और जप की फुर्सत नहीं होगी अर्थात् 'ओ३म्' स्वतः उद्भव होगा।

मैंने आचार्य जी से पूछा था कि जब समाधि में योगाभ्यासी का श्वांस प्रश्वांस बन्द होने लगता है यहाँ तक कि हृदय की गति भी मन्द अथवा बन्द हो जाती है तब उस समय उसका आत्मा कहाँ रहता है। उसका उत्तर था कि श्वांस प्रश्वांस की गति रुकने की अवस्था में जब देर तक होगी तो हृदय की गति भी बन्द होगी। रक्त का परिभ्रमण भी बन्द रहेगा, प्राणशक्ति जीवात्मा के साथ हृदय में जहाँ चित्त ठहरा हुआ है या भृकुटी या सहस्रार चक्र में स्थित रहकर शरीर को जीवित तेजयुक्त रखती है। उसमें मृतवत् दुर्गन्ध विकृति नहीं होती।

अनेक साधक कहते हैं कि उस समाधि अवस्था में प्राण, सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश कर जाता है। तात्पर्य यह कि आत्मा जब तक किसी भी कोश में स्थित होकर इस शरीर में रहेगा तब तक मृत सदृश समझा जाने वाला शरीर प्रयत्न करने पर पुनः मन प्राण आदि को प्राप्त कर सकता है। इसका प्रमाण यजुर्वेद में है-

पुनर्मनः पुनरायुर्मऽआगन्पुनः प्राणः पुनरात्मा मऽआगन्पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं मऽआगन्।
- यजु ४/१५

अर्थात् मुझे पुनः मन, आयु, प्राण, आत्मा, चक्षु और श्रोत्रादि प्राप्त हों। यह कार्य वैश्वानर अग्नि के कारण तथा शरीर की स्थिति ठीक होने पर ही होगा। यौगिक आसन एवं प्राणायाम आसपास के शान्त वातावरण, प्रातः चार या पाँच बजे से करना चाहिए। प्राणायामों के समाप्त होने पर पाँच बार भ्रामरी अवश्य करें। जिनको हाइब्लडप्रेसर एवं गैस की बीमारी तथा उदर ठीक नहीं रहता उन्हें प्राणायाम अधिक देर तक नहीं करना चाहिए।

पाँच सूक्ष्मभूत एवं आत्मा के सम्बन्ध से सूक्ष्म शरीर बना है। अन्तरिक्ष (सूर्य) अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी इन्हीं तत्वों को प्राप्त कर (सूक्ष्म शरीर द्वारा) आत्मा, शरीरधारी प्राणियों के उत्पन्न का कार्य कारण बना है। सूक्ष्म शरीर का गठन- पाँच प्राण (से पाँच कर्मेन्द्रिय) पाँच सूक्ष्म भूत (से) पाँच ज्ञानेन्द्रिय (और आत्मा से) मन तथा बुद्धि इन सतरह तत्त्वों के समुदाय से हुआ है।

मुकाम पोस्ट- मुरई, जिला- वीरभूम
पश्चिम बंगाल- ७३१२१९
मोबाइल- ०८१५८०७८०११

अनेक विशेषताओं से युक्त १८८४ के
मूल सत्यार्थप्रकाश के सर्वाधिक
नजदीक, तत्कालीन शैली का
संरक्षण, मुद्रण अशुद्धियों से रहित
सत्यार्थप्रकाश
अवश्य खरीदें।
अब मात्र आधी कीमत में
₹ ४०
३५०० रु. सैंकड़ा
शीघ्र मंगवाएँ
घाटे की पूर्ति पूर्ववत् दानदाताओं के सहयोग से ही संभव होगी। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि सत्यार्थप्रकाश प्रेमी इस कार्य में आगे आवेंगे।
श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास, नवलखा महल, गुलाबबाग, उदयपुर - ३१३००१

सत्यार्थ सौरभ के वर्तमान ग्राहकों के लिए रियायती योजना

आपकी सदस्यता को यदि आप पंचवर्षीय सदस्यता में परिवर्तित करते हैं तो चार सौ की बजाय केवल तीन सौ रु. भेज दें तो आपको पंचवर्षीय सदस्यता सूची में नामित कर लिया जायेगा। इसी प्रकार अगर आप आजीवन सदस्य बनना चाहते हैं तो बजाय एक हजार रु. के मात्र नौ सौ रु. प्रेषित करने का श्रम करें तो आपको आजीवन सदस्यता सूची में सम्मिलित कर लिया जायेगा।

मॉरीशस को सत्यार्थ प्रकाश की देन

महर्षि दयानन्द सरस्वती आजीवन इतने कार्य में व्यस्त थे कि उन्हें किसी अन्य देश की यात्रा करने का समय ही नहीं मिला। इसीलिए विश्व कल्याण के अभिलाषी होते हुए भी वे मात्र भारत में ही आर्य समाज जैसी मानव हितैषिणी संस्था की स्थापना कर सके। मॉरीशस लघु भारत कहलाता है। इस देश में ऋषिराज दयानन्द के अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश ने आर्य समाज की अग्नि प्रज्ज्वलित की।

मॉरीशस में सत्यार्थप्रकाश के आगमन की घटना बड़ी ऐतिहासिक है। बात सन् १८६८ की है। बंगाल में सैनिकों की एक टुकड़ी यहाँ आई थी। उस सेना में एक सैनिक का नाम था-भोलानाथ तिवारी। वे महर्षि दयानन्द के दो कालजयी ग्रन्थ साथ ले आये थे। एक था- सत्यार्थप्रकाश और दूसरी थी- संस्कारविधि। सन् १९०२ में मॉरीशस से प्रस्थान करते समय वे उक्त दोनों ग्रन्थ अपने ग्वाले, भिखारी सिंह को दे गये। भिखारी सिंह उन ग्रन्थों को पढ़ने में असमर्थ थे। उन्होंने दोनों पुस्तकें मेघवर्ण नाम के एक सनातनी पंडित को दे दीं। मेघवर्ण जी से वह सत्यार्थप्रकाश श्री खेमलाल लाला जी के हाथ में पहुँचा। उस सत्यार्थप्रकाश को पढ़कर लाला जी की आत्मा प्रकाशित हो उठी। फिर उनके मित्र-गुरुप्रसाद, दलजीतलाल एवं जगमोहन गोपाल ने उस ग्रन्थ को पढ़ा। सत्यार्थप्रकाश के स्वाध्याय से वे मंत्र मुग्ध हो गए। फलतः तीनों व्यक्तियों ने मॉरीशस के क्यूरपिप शहर में सन् १९०३ को प्रथम आर्य समाज की स्थापना की। इतिहास साक्षी है कि सत्यार्थप्रकाश ने ही मॉरीशस की धरती को आर्य समाज दिया।

मॉरीशस को सत्यार्थप्रकाश की दूसरी देन है- खड़ी बोली हिन्दी। सत्यार्थप्रकाश के ही माध्यम से आर्य भाषा इस देश में पहुँची। ऋषिवर दयानन्द ने हिन्दी को आर्य भाषा घोषित किया था।

सन् १९३४ से भारतवंशी गिरमिटिया प्रथा के अन्तर्गत शर्तबन्द मजदूर बनकर मॉरीशस आने लगे। अप्रवासन काल सन् १९१५ तक जारी रहा। वे अपने साथ अपनी भाषा और संस्कृति लिए आते थे। आरम्भिक वर्षों के श्रमिकों में कुछ लोग रामचरितमानस और सन्तनामा की हस्तलिखित प्रतियाँ ले आये थे। वे अपनी भाषा और धर्म की रक्षा के लिए रात्रिकाल में फूस के बने झोपड़ों में बैठकर सत्संग किया करते थे। उस स्थान को वे 'बैठका' कहा करते थे। यह 'बैठका' उनका सांस्कृतिक केन्द्र था।

चूँकि आये हुए अधिकांश भारतीय श्रमिक पश्चिमी बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के उन स्थानों से थे, जहाँ भोजपुरी बोली जाती थी, इसलिए यहाँ भी सभी अप्रवासियों की सम्पर्क भाषा भोजपुरी ही बन गई। बैठकाओं में बच्चों को अक्षरज्ञान भी भोजपुरी के ही द्वारा कराया जाता था। तत्कालीन शिक्षण विधि का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

पहिल-क, दूसर-ख, गुनिया-ग, छता- छ, जनेवा- ज, पहनवा- प, तीनकोनिया -य आदि।

मात्रा का ज्ञान या बारहखड़ी का अभ्यास इस प्रकार कराया जाता थाः-

क में कानून- का, क में हिरसिन- कि, क में दीरघिन- की, क में तारुकुन- कु, क में बार्जून- कू, क में एकले-के, क में दौले- कै, क में कोर्मत- को, क में दूजकनौ- कौ, क में मांस्ते- कं, क में दुबासी- कः।

उपर्युक्त शिक्षण पद्धति में भोजपुरी का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित है। बच्चों को स्वर व्यंजन तथा मात्राएँ क्रम में रटाई जाती थीं। वे धीरे-धीरे शब्दों, फिर वाक्यों को पढ़ने में समर्थ होते थे। थोड़ा सी गिनती का ज्ञान भी कराया जाता था। पहाड़े का अभ्यास इस क्रम से होता था-

दू- इकाई दू, दू दुंयां चार, दू तीयां छौ, दू चौके आठ, दू पाँचे दस, दू छके बारह, दू साते चौदह, दू आठे सोलह, दू नवे अठारह, दू दहाई बीस।

भोजपुरी के अतिरिक्त भारतीय मूल के कुछ लोग सूर, तुलसी और कबीर की भाषाओं का भी साधारण ज्ञान रखते थे। आर्य समाज की स्थापना के पश्चात् खड़ी बोली हिन्दी का प्रचार शुरू हुआ। सत्यार्थप्रकाश के पठन-पाठन ने आर्य भाषा के प्रचार को इस देश में बढ़ावा दिया। सन् १९११ में डॉ. चिरंजीव भारद्वाज सपत्नीक मॉरीशस आये और उनका प्रवास यहाँ सन् १९१४ तक रहा। यद्यपि डॉ. चिरंजीव भारद्वाज ने सत्यार्थप्रकाश का अनुवाद अंग्रेजी भाषा में किया था, तथापि उन्होंने इस देश में खड़ी बोली के माध्यम से ही वैदिक धर्म का प्रचार किया। आर्यसमाज ने अनेक हिन्दी पाठशालाएँ खोलीं और हिन्दी का शिक्षण जोर-शोर से होने लगा।

आर्यसमाज की स्थापना से पूर्व हिन्दू समाज अविद्या के सागर में गोते खा रहा था। माता-पिता अपने बच्चों की पढ़ाई लिखाई पर ध्यान नहीं देते थे। सत्यार्थप्रकाश के तीसरे समुल्लास में महर्षि ने लिखा- 'सब वर्णों के स्त्री पुरुषों में विद्या और धर्म का प्रचार अवश्य होना चाहिए।' ऋषिवर के उपर्युक्त आदेश का मॉरीशस के हिन्दुओं, विशेषकर आर्य समाज के सदस्यों पर अचूक प्रभाव पड़ा। वे अपने बच्चों को विद्यार्जन के लिए स्कूल कॉलेज भेजने लगे। मॉरीशस के प्रथम बैरिस्टर और प्रथम डॉक्टर आर्यसमाजी परिवार के ही बच्चे बने।

भारत के समान ही इस देश में भी लड़कियों को पढ़ने लिखने का अधिकार नहीं था। डॉ. चिरंजीव भारद्वाज की पत्नी सुमंगली देवी ने यहाँ कन्या पाठशाला खोली। आर्य समाजी बच्चियों के साथ ही सनातनी परिवार की कन्याएँ भी पढ़ने लगीं। मॉरीशस के प्रथम प्रधानमंत्री सर शिवसागर रामगुलाम जी के ससुर ने भी आर्य समाज के विद्या-प्रचार से प्रभावित होकर अपनी कन्या को स्कूल भेजा था। इस तरह सत्यार्थप्रकाश के पठन-पाठन के कारण मॉरीशस में अविद्यान्धकार तिरोहित हुआ।

मॉरीशस को सत्यार्थप्रकाश की सबसे बड़ी देन है- वैदिक धर्म का ज्ञान। भारतीय अप्रवासी इस देश में अनेक पौराणिक देवी देवताओं को साथ में ले आये थे। भूत-प्रेत फलितज्योतिष, ग्रह-शान्ति, झाड़-फूँक आदि अन्धविश्वासों को मन में संजोये आये थे। मॉरीशस की धरती पर अनेक देवी देवताओं की पूजा होने लगी। काली माई की पूजा में बकरों की बलि दी जाती थी।

सत्यार्थप्रकाश ने अन्ध परम्पराओं और अन्धविश्वासों के अन्धकार को चीर-फाड़ कर अनगिनत जनों के हृदयों में वैदिक धर्म का प्रकाश भर दिया। ईश्वर, जीव और प्रकृति का सच्चा ज्ञान देकर अज्ञान में डूबे जनों को ज्ञान-ज्योति से ज्योतित कर दिया। कहने की आवश्यकता नहीं कि बहुत से हिन्दू सत्यार्थप्रकाश से आलोकित होकर आर्य समाज की छत्र-छाया में आये।

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में लिखा- जो मिथ्या बात न रोकी जाय तो संसार में बहुत से अनर्थ प्रवृत्त हो जायें। आगे लिखा-...सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें, क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।

सत्य को परिभाषित करते हुए उन्होंने लिखा- 'जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है।' आगे लिखा है- 'विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आन्नद में रहैं।'

सत्य की परिभाषा से मॉरीशसीय हिन्दू परिचित हुए। फलतः अनेक देवी देवताओं की पूजा के स्थान पर एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की उपासना, ब्रह्मयज्ञ के माध्यम से होने लगी।

देवयज्ञ का व्यापक प्रचार किया गया। अनार्ष ग्रन्थों को त्यागकर आर्य समाजी वेद की ओर उन्मुख हुए। वेद के आधार पर वर्ण व्यवस्था को मान्यता दी गई। पददलित लोग द्विज बनकर वैदिक धर्म का प्रचार करने लगे। ईसाईकरण की बाढ़ में बहने वाले हिन्दुओं की रक्षा की गई।

सन् १९९८ में आर्य सभा ने मॉरीशस में सत्यार्थप्रकाश आगमनशती समारोह मनाने के लिए मॉरीशस स्थित महात्मा गाँधी संस्थान के भव्य सभागार में कुरुक्षेत्र निवासी प्रसिद्ध विद्वान् प्रोफेसर रामप्रकाश की अध्यक्षता में एक त्रिदिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन का शानदार आयोजन किया था, जिसमें भाग लेने के लिए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्कालीन प्रधान श्री वन्देमातरम

एवं महामंत्री श्री सच्चिदानन्द शर्मा जी ने अपनी उपस्थिति दी थी। दक्षिण अफ्रीका, हॉलैण्ड, इंग्लैण्ड, कनाडा आदि देशों से कई विद्वानों और विदुषियों ने सम्मिलित होकर सत्यार्थप्रकाश पर अपना-अपना आलेख प्रस्तुत किया था। उस आर्य महासम्मेलन के दिन से आज तक आर्य सभा मॉरीशस ने सत्यार्थप्रकाश के प्रचार-प्रसार में कोई कोर कसर बाकी नहीं छोड़ी। संभवतः विश्व में एक ही ऐसा देश होगा, जो प्रतिवर्ष जून महीने में 'सत्यार्थप्रकाश मास' मनाता है। विज्ञजनों को विदित है कि १२ जून को महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश का प्रणयन प्रारम्भ किया था।

{सत्यार्थ सौरभ के 'जून' अंक में स्थानाभाव के कारण यह महत्त्वपूर्ण लेख न छप सका अतः जुलाई अंक में इसे दिया जा रहा है। महर्षि दयानन्द ने अपने जीवनकाल में ही सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय संस्करण को तैयार कर प्रेस में भेज दिया था जिसके ३६४ पृष्ठ महर्षि जी के जीवनकाल में छप चुके थे। परन्तु ऋषि के अस्वस्थ होने, पश्चात् निर्वाण होने के कारण सम्पूर्ण ग्रन्थ १८८४ में प्रकाशित हो पाया। सत्यार्थप्रकाश के इस द्वितीय संस्करण ने देश-विदेश में किस प्रकार क्रान्ति पैदा कर, सूर्य के समान सत्य का प्रकाश फैलाया इसका आभास इस आलेख से हो सकता है। सत्यार्थप्रकाश ने १८८४ से लेकर अद्यतन जिस प्रकार लाखों लोगों के जीवन की दिशा व दशा में समग्र सकारात्मक परिवर्तन किए उसे संकलित कर लिखने लगें तो हजारों पृष्ठ भी कम पड़ जाय। -**सम्पादक** }

इस मास को मॉरीशसीय आर्य समाज ने वर्षों से सत्यार्थप्रकाश मास घोषित किया हुआ है। इस महीने में तीसों दिन इस महान् ग्रन्थ का धुँआधार प्रचार होता है। पहली जून से लेकर तीस जून तक आर्य सभा अपनी चार सौ शाखा समाजों में सत्यार्थप्रकाश पर विशेष सत्संगों, संगोष्ठियों, प्रवचनों आदि का आयोजन करती है। प्रतिदिन प्रातःकाल में मॉरीशसीय रेडियो से सत्यार्थप्रकाश के विभिन्न समुल्लासों पर विशेष संदेश प्रसारित होता है। स्कूल कॉलेजों में पैम्फलेट, पुस्तिका आदि के माध्यम से बच्चों को सत्यार्थप्रकाश की शिक्षाओं से अवगत कराया जाता है। हिन्दी, अंग्रेजी और फ्रेंच में छपे सत्यार्थप्रकाश की खूब बिक्री की जाती है। सत्यार्थप्रकाश के पठन-पाठन पर इस जून मास में विशेष बल दिया जाता है।

सत्यार्थप्रकाश ने मॉरीशस को धर्म का ज्ञान देकर सबको सुख का मार्ग बताया। इस ग्रन्थ को पढ़कर वैदिक धर्मियों ने वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रीय धर्म का पालन किया। महर्षि ने लिखा- 'सब जीव स्वभाव से सुख प्राप्ति की इच्छा और दुःख का वियोग होना चाहते हैं। परन्तु जब तक धर्म नहीं करते और पाप नहीं छोड़ते तब तक उनको सुख का मिलना और दुःख का छूटना न होगा।'

मॉरीशस के आर्यों ने महर्षि के इस कथन को शिरोधार्य किया। परिणामतः वे सुखी जीवन के अधिकारी बने। सत्यार्थप्रकाश ने ही सब के लिए सुख का मार्ग प्रशस्त किया इसीलिए मॉरीशस का आर्य जगत् इस अमर ग्रन्थ के प्रति जून मास में अपनी विशेष श्रद्धा अर्पित करता है।

- डॉ. उदय नारायण गंगू
ओ.एस.के.,आर्य रत्न,
प्रधान आर्य समाज, मारीशस

सत्यार्थप्रकाश प्रचार सहयोग निधि

- **सत्यार्थ प्रकाश से उत्कृष्ट कोई ग्रन्थ नहीं जिसके प्रकाशन में आपकी पुण्य दान राशि का प्रयोग हो।** सत्यार्थ प्रकाश प्रचार हेतु,कम राशि में अधिक संख्या में यह महान् ग्रन्थ जन-जन के हाथों में पहुँच सके, एतदर्थ निम्न योजना निर्मित की गई है:-
- सत्यार्थप्रकाश के प्रचार हेतु कृपया निम्नानुसार सहयोग कर **लागत मूल्य से आधी कीमत में** सत्यार्थप्रकाश का दिया जाना सुनिश्चित करें। आपके द्वारा सहयोगार्थ प्रदान की गई राशि के समक्ष अंकित प्रतियों पर आपका अथवा आपके किसी प्रियजन का चित्र ग्रन्थ पर दिया जावेगा।

राशि	प्रतियों की संख्या	राशि	प्रतियों की संख्या
एक लाख रु.	दस हजार	७५०००	७५००
५००००	५०००	२५०००	२५००
१००००	१०००	इससे स्वल्प राशि देने वाले दानवीरों के नाम ग्रन्थ में अंकित किये जायेंगे।	

आपका दान आयकर अधिनियम की धारा ८० जी के अंतर्गत करमुक्त होगा। राशि न्यास के नाम ड्राफ्ट या चैक द्वारा भेजें अथवा यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, उदयपुर खाता क्रमांक ३१०१०२०१००४१५१८ में जमा कर सूचित करें।

निवेदक

भवानीदास आर्य, मंत्री-न्यास | भंवरलाल गर्ग, कार्यालय मंत्री | डॉ.अमृत लाल तापड़िया, उपमंत्री-न्यास

परिणाम एवं पद्धति में प्रधान कौन?

- डॉ. जितेन्द्र कुमार

संसार में प्रारम्भ से ही दो प्रकार के मनुष्य दिखाई देते हैं। एक परिणामवादी और दूसरे पद्धतिवादी। परिणामवादियों का विश्वास सफलता में है। उनका मानना है कि किसी भी कार्य का सुख उसके परिणाम पर ही निर्भर करता है। परिणाम अपेक्षित अथवा मनोनुकूल प्राप्त होता है तो वह सुख का कारक होता है। परिणाम पर सर्वाधिक ध्यान देने वाले लोग पद्धति पर विचार करने में कृपणता का व्यवहार करते दिखाई देते हैं। वे तो किसी की परवाह किए बिना मात्र परिणाम पर केन्द्रित होते हैं। परिणाम, लक्ष्य, उद्देश्य ऐसे आकर्षक शब्द हैं जो प्रत्येक मनुष्य को लुभाते हैं, अपनी ओर बलात् खींचते हैं। और अनेक बार कार्य पद्धति की अवहेलना तथा उपेक्षा करने के लिए भी उकसाते हैं एवं अनुचित मार्ग का अनुसरण करने के लिए उत्प्रेरित करते हैं। मानव को कार्य में प्रवृत्त कराने के लिए भी परिणाम का लुभावना स्वप्न दिखाना बहुत आकर्षक और उचित प्रतीत होता है परन्तु क्या उचित कार्य पद्धति के बिना परिणाम प्राप्त होने पर भी वह श्रेष्ठ कहलायेगा? क्या लक्ष्य की प्राप्ति में पवित्र कार्यविधि का होना आवश्यक नहीं है? क्या उद्देश्य की उपलब्धि में अनुचित साधनों का प्रयोग अथवा येन केन प्रकारेण स्वार्थसिद्धि सफलता की कसौटी मानी जायेगी? क्या दूषित प्रक्रिया अथवा अवैध सरणि के माध्यम से प्राप्त सफलता सफलता कहलाने की अधिकारिणी है?

यह प्रश्न आज दो राह पर खड़े प्रत्येक मनुष्य के हृदय में मस्तिष्क में निरन्तर अंगद के पाँव के समान स्थित है, अटल है। चिन्तन करने के लिए विवश करता है। जो परिणामवादी हैं वे 'कैसे' पर ध्यान नहीं देना चाहते। परिणाम सुचारु पद्धति की ही अपेक्षा नहीं रखता अपितु वह तो सफलता के बाधक तत्वों के विनाश में भी विश्वास करता है। अतः वह सुनियोजित नीयत के अनुसार नीति का निर्धारण करने में शीघ्र सफलता पाने को विकल हो उठता है। तब वह नीति का मान और सम्मान तभी तक करता है जब तक वह सफलता में अवरोधक नहीं बनती जैसे ही उसे न्याय के मार्ग पर नीति के रथ पर अपेक्षित एवं शीघ्र परिणाम दिखाई नहीं देता वैसे ही वह अन्याय की, अनीति की सीढ़ी पर आरोहण कर सफलता के कदम चूमने को लालायित दिखाई देता है। वह परिणाम प्राप्ति की भूख इतनी तीव्र अपने मन में जगा लेता है कि फिर उसे क्षुधा-तृप्ति का अनीति का मार्ग भी रुचिकर और उचित दिखाई पड़ता है। वह तो अभेदवादी अद्वैत दर्शन की सरणि का अनुसरण करता हुआ सफलता के सोपान पर आरुढ़ हो जाता है। तब वह कृष्ण का, चाणक्य का उदाहरण सामने रखता है और उनकी आड़ में उनके नाम द्वारा अपने अनीति के पथ को भी प्रशस्त करने में संकोच नहीं करता है। नीयत नीति का निर्धारण करती है। हमारी नीयत यदि स्वच्छ है, पवित्र है उसमें कोई दूषित भाव अथवा स्वार्थ सिद्धि का भाव नहीं है तो नीति भी वैसी ही बनती है। यदि नीयत दर्शन है तो नीति धर्म है। धर्मरूपी नीति का अनुसरण नीयत रूपी दर्शन को व्यक्त करता है।

अपनी बदनीयत को नेकनीयत के रूप में तथा अनीति और अन्याय को नीति के आवरण में प्रस्तुत करने की चेष्टा करता है। कारण इच्छित सफलता की तीव्र चाह और शीघ्र राह। परिणामवादी व्यक्ति बुद्धि प्रधान कहे जा सकते हैं। वे वस्तुओं को तो साधन समझते ही हैं परन्तु व्यक्तियों को साधन में रूप में प्रयोग करने से भी नहीं चूकते। जब व्यक्ति को वस्तु के समान ही उपकरण समझा जायेगा तब व्यक्ति के मन पर, हृदय पर, भावनाओं पर, चित्त पर क्या प्रभाव पड़ेगा। इसकी चिन्ता नहीं होगी तब तो वस्तु जैसे जड़ है वैसे ही मनुष्य भी जड़ की तरह प्रयुक्त होगा। उसका इतना ही ध्यान रखा जायेगा जितना वस्तु के टूटने का अथवा खराब होने पर कार्य न कर पाने की स्थिति का रखा जाता है। मनुष्य मशीन बनने की ओर निरन्तर अग्रसर होगा। अतः सफलतावादी बुद्धि प्रधान, स्वार्थ-सिद्धि में निपुण मनुष्य परिणाम के उन्माद में बहुधा विध्वंसक और विघातक हो जाता है। ये लोग परिणाम को ही प्रधान कर्म मानकर अपनी समस्त चेष्टाओं, क्रियाओं और प्रक्रियाओं को सम्पादित करने में अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते हैं। यही

कारण है कि एक छात्र प्रमाण पत्र रूपी एक कागज के टुकड़े पर सम्पूर्ण ध्यान केन्द्रित करके मात्र अध्ययन में ही नहीं निरत रहता अपितु अध्ययन विमुख होकर अनैतिक उपायों में भी अनुचित साधनों के प्रयोग करके भी परीक्षा में सुपरिणाम की चिन्ता करता है और आज के संदर्भ में तो यह इतनी अधिक छात्रों के मन में बैठ गई है कि अनुचित साधनों के प्रयोग से ही अच्छे परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। अध्ययन की कहाँ आवश्यकता है? जब परिणाम अध्ययनशील छात्र और जुगाड़ू छात्र में से जुगाड़ू छात्र का अधिक अच्छा आ रहा है, उसके अंक उससे अधिक हैं तो व्यक्ति को परिणामवादी दृष्टिकोण अपनी ओर आकृष्ट करता ही है।

परिणामवादी दृष्टि से ग्रस्त होता हुआ व्यक्ति पद्धति पर विचार सर्वथा नहीं करता है। यही दृष्टिकोण समाज के प्रत्येक वर्ग में अपना कार्य करता हुआ दिखाई देता है। खिलाड़ियों में से खेल भावना विलुप्त होती जा रही है और उसके स्थान पर जीत ने अपना स्थान सुनिश्चित कर लिया है। जीतना है चाहे दूसरो को गिराकर ही क्यों न जीतें। जीतना है चाहे नियमों के विपरीत उत्तेजक दवाइयों का सेवन करके ही क्यों न जीतें। जीतना है, चाहे पैसे देकर या प्राप्त कर भ्रष्टाचरण (मैच फिक्सिंग) का सहारा लेकर ही क्यों न जीतें। जीत, जीत और बस केवल जीत। भौतिक शरीर में जैसे जीत के लिए ऊतकों को और अधिक क्रियाशील बनाने में उत्तेजक रसायनों का प्रयोग कर कार्य करता है वैसे ही मनुष्य के मन में उत्तेजक परिणाम की गूँज और अनुगूँज मन को तीव्र गतिशील और उत्प्रेरित करती रहती है। वह पराभव की सोच भी नहीं सकता परन्तु क्या सदैव जीतना संभव है? पराजय भी हमें आगे बढ़ना सिखाती है। पुनरपि ये लोग पराभव की कल्पना नहीं करना चाहते। क्योंकि मात्र आगे बढ़ना उद्देश्य परिणामवादियों का है। पद्धतिवादी तो आगे बढ़ें या न बढ़ें परन्तु ऊपर उठते हैं, नीचे गिरने में उनका विश्वास नहीं। नीचता करने से नीचे गिरकर भी आगे बढ़ना परिणामवादी दृष्टि को प्रदर्शित करता है। पद्धतिवादी दृष्टि किसी भी परिस्थिति में बिना नीचे गिरे निरन्तर धैर्य व सतत् साधनारत् रहते हुए ऊपर उठने में प्रविधि की महत्ता को व्यक्त करती है। उर्ध्वगामी दृष्टि पद्धतिवाद को अभिव्यक्त करती है और परिणामवादी दृष्टि अधोगामी से परहेज नहीं करती। क्योंकि उन्हें तो परिणाम चाहिए। आज राजनेता परिणामवादी हैं। वे अपने सचिवों को, प्रशासन को आदेश देते हैं कि अमुक कार्य होना चाहिए। सचिव यदि उस कार्य की नियमानुकूलता का निषेध करता है तो मंत्री महोदय कहते हैं कि मुझे तुम क्या करते हो, कैसे करते हो, इससे मतलब नहीं है। मैं तो परिणाम चाहता हूँ। और फिर शुरू होता है नियमों, पद्धतियों, प्रक्रियाओं के टूटने का क्रम जो फिर कभी रुकता नहीं है। जो सचिव इस कार्य को भली भाँति कर लेता है वह मंत्रीजी का प्रियपात्र होता है। यह परिणामवाद व्यक्ति को नियमों को तोड़ने के लिए उकसाता है और मनुष्य का एक बार पतन प्रारम्भ हो जाय तो वह कितना गिर सकता है इसका अनुमान करना कठिन है। भर्तृहरि के एक श्लोक की अन्तिम पंक्ति इसी ओर इंगित करती है।

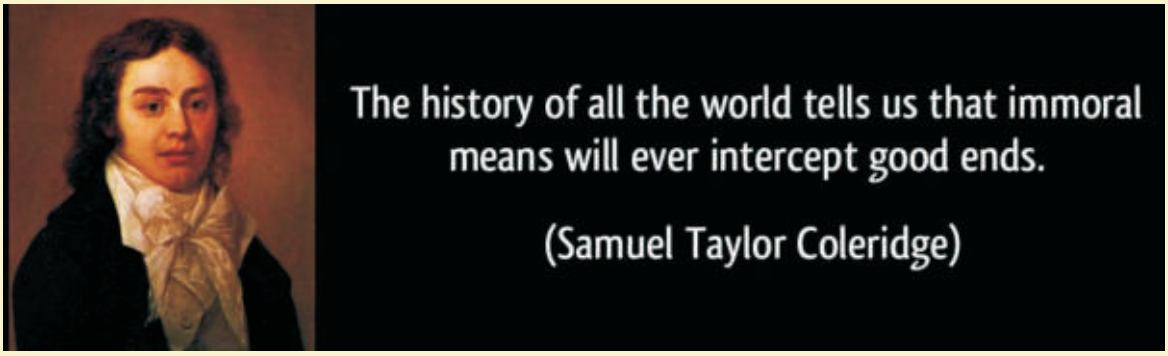

विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः'।

गंगा नदी का जब पतन स्वर्ग से प्रारम्भ हो गया तो वह शिव की जटाओं और हिमालय पर ही नहीं गिरी अपितु गिरते गिरते रसातल तक, पाताल लोक तक पहुँच गयी। ठीक उसी प्रकार मनुष्य का विवेक भ्रष्ट हुआ नहीं कि हजारों तरह से पतन प्रारम्भ हो जाता है। उस पतन का कोई माप नहीं है। अतः परिणामवादी दृष्टि में पतन प्रधान है। पद्धति, कार्य करने की विधि, पतन न होने पाये इस बात का सदैव ध्यान रखती है। वह परिणाम की परवाह नहीं करती यह प्रक्रिया को ही परिणाम के रूप में देखती है। तभी तो पत का विपर्यय तप है। उनका विश्वास है कि तप पद्धति में ही है। जिस क्षण तप भंग हुआ, तप शिथिल हुआ तत्क्षण पतन प्रारम्भ हो जाता है। इसलिए पद्धति तप प्रधान है। और तो

और इस परिणामवादी दृष्टि से तो मंदिरों के पुजारी, मठों के मठाधीश, आश्रमों के तथाकथित संत भी नहीं बच सके। वे भी हमारे मंदिरों की और हमारी प्रतिष्ठा दूसरों से कैसे अधिक हो, मठों की ख्याति कैसे बढ़े, आश्रमों की प्रगति कैसे हो, इस बात को परिणामात्मक रूप में देखते हैं। क्या पद्धति हो, क्या स्वस्थ प्रक्रिया हो, क्या प्रमुख कार्य प्रविधि हो इस पर ध्यान नहीं देते। मठाधीशों के अनेकविध दुष्कृत्य समाचार पत्रों में जो पढ़ने को मिलते हैं वह उक्त बात को प्रमाणित करते हैं। उनके मार्ग में कोई व्यक्ति बाधा बनकर उभरता है तो उसका वध करने या करवाने में भी संकोच नहीं करते। ईर्ष्या और द्वेष से दूर रहने का उपदेश करने

वाले परिणाम प्राप्ति के व्यामोह में स्वयं विद्वेष की अग्नि में धधकते हुए ग्रस्त होकर कार्य करने में हिचकिचाहट अनुभव नहीं करते। यह तो साधु सन्तों की जमात तक का हाल है। यह सब परिणामवादी दृष्टि का ही दुष्परिणाम है जो समाज में अनेक रूपों में दिखाई पड़ता है। और अब धनाढ्य वर्ग धन के संग्रह करने में कैसी-कैसी हिंसा और अत्याचार तथा भ्रष्टाचार एवं मिथ्याचार नहीं करते यह कहने की बात नहीं है। अर्थ की इस अन्धी दौड़ में ज्यादा और ज्यादा के चक्कर में व्यक्ति ने सारे सिद्धान्त सारी विधियाँ ताक पर रखकर नैतिक पतन स्वयं का करने के पश्चात् भी पैसा प्राप्त करने की परिणामात्मक सोच को जीवित रखा है। जबकि मनु महाराज मनुस्मृति में साधन शुचिता का उल्लेख करके पद्धतिवादी दर्शन को महत्व देते दिखाई देते हैं।

यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं स्वैः कर्मभिरगर्हितैः।
अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसंचयम्॥ – मनुस्मृति ४/३

इस श्लोक में अर्थशास्त्रोपयोगी तीन सूत्र बताये हैं

१.आवश्यकता से अधिक संग्रह न करें।

२.अनुचित साधनों से धन न कमायें।

३. धन के पीछे अपने शरीर की उपेक्षा न करें।

आज का मनुष्य परिणाम शीघ्र और प्रचुर मात्रा में प्राप्त करने की प्रतिस्पर्धा में अपने शरीर की भी उपेक्षा करने में सकुचाता नहीं है। और जिसे अपने शरीर की धन कमाने में परवाह नहीं वह दूसरों की चिन्ता अथवा परवाह क्योंकर करेगा? यह तो संभव ही नहीं है। तब वह अनुचित साधनों से धन न कमाये और आवश्यकता से अधिक संग्रह न करे ऐसा कैसे हो सकता है? पद, पैसा और प्रतिष्ठा ये तीनों प्रकार परिणाम से बहुत अच्छे लगते हैं, परन्तु इनकी प्राप्ति की पद्धति सतत साधना का पथप्रशस्त करती है। जिससे व्यक्ति बिदकता है। वह शीघ्र परिणाम प्राप्ति की आकण्ठ अभिलाषा में निमग्न होता हुआ साधन शुचिता की बात पर ध्यान नहीं देता और परिणाम के लिए अपना पतन भी कर लेता है।

जो मनुष्य मात्र परिणाम पर विश्वास करता है वह अचिर और प्रभूत पैसा, प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए पद्धति पर विचार मात्र दिखावे के लिए करता है। किन्तु करता वह वही है जो उसे परिणाम त्वरित प्राप्त कराने में कार्य विधि सहायता करती है जिसको अंग्रेजी में शॉर्टकट (छोटा रास्ता) कहा जाता है। स्वामी विवेकानन्द का कथन इस प्रसंग में सामयिक प्रतीत हो रहा है। वे कहते हैं कि शॉर्टकट रास्ता व्यक्ति को भी शॉर्टकट बना देता है। गीता में भी ऐसे व्यक्तियों की मनोवृत्ति का सूक्ष्म एवं यथार्थ चिन्तन किया गया है। चार-पाँच श्लोक यहाँ प्रस्तुत करना अनुमोदनार्थ आवश्यक समझता हूँ-

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान्॥ – गीता १६/१२

सैंकड़ों आशारूप पाशों में जकड़े हुए अथवा बन्धे हुए सब ओर से खींचे जाते हुए, काम क्रोध ही जिनका परम आश्रय है ऐसे काम क्रोधपरायण पुरुष धर्म के लिए नहीं हैं अपितु भोग्य वस्तुओं का भोग करने के लिए अन्यायपूर्वक अर्थात् दूसरों को पिटवाना, मरवाना, सत्व का हरण करना आदि अनेक पापमय युक्तियों द्वारा धन सम्पदा अथवा पद प्रतिष्ठा इकट्ठा करने की चेष्टा किया करते हैं -

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी॥ – गीता १६/१४

अमुक देवदत्त नाम दुर्जयशत्रु तो मेरे द्वारा मारा जा चुका, अब दूसरे पामर निर्वत शत्रुओं को भी मैं मार डालूँगा या पलायन करने के लिए विवश कर दूँगा। यह बेचारे गरीब तेरा क्या करेंगे जो किसी प्रकार भी मेरे समान नहीं हैं। मैं

ईश्वर हूँ, भोगी हूँ, सब प्रकार से सिद्ध हूँ। मैं केवल साधारण मनुष्य नहीं हूँ, प्रत्युत् बड़ा बलवान् और सुखी भी मैं ही हूँ। दूसरे सब तो भूमि पर भार रूप में ही उत्पन्न हुए हैं।

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽयोऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः॥ - गीता १६/१५

मैं धन से सम्पन्न हूँ, उच्च कुल में उत्पन्न हूँ, धन और कुल में भी मेरे समान दूसरा कौन है अर्थात् कोई नहीं। मैं यज्ञ करूँगा, नर आदि को धन दूँगा, अपने बुलाये हुए मित्रों को याज्ञिकों को दक्षिणा दूँगा और मोदिष्ये= हर्षित होऊँगा। इस प्रकार वे मनुष्य अज्ञान से मोहित अर्थात् अनेक प्रकार की अविवेक भावना से युक्त होते हैं।

आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम्॥ - गीता १६/१७

और वे अपने आपको सर्वगुण सम्पन्न मानकर स्वयं ही अपने को बड़ा मानने वाले, स्तब्ध, विनयरहित, धनवान और मद से युक्त पुरुष पाखण्ड से अर्थात् अधर्म की ध्वजापन से, अविधिपूर्वक केवल नाम मात्र के यज्ञों द्वारा पूजन किया करते हैं।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः॥
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥ - गीता १६/२३

जो मनुष्य शास्त्रोक्त विधि का परित्याग कर कामना से अर्थात् परिणाम बुद्धि से युक्त होकर व्यवहार करता है। वह न तो सिद्धि को पाता है और न सुख एवं मोक्ष को ही प्राप्त करता है। वेद का मन्त्रांश भी इसी ओर स्पष्ट संकेत करता है 'अग्ने नय सुपथा राये' अर्थात् हे अग्नि स्वरूप प्रभो! आप हमें धन सम्पत्ति, ऐश्वर्य के लिए अच्छे मार्ग से ले चलिये। इससे हमारी पद्धति भी श्रेष्ठ हो इसका निर्देश प्राप्त होता है। उक्त सभी श्लोकों में पद्धति पर पूर्णरूप से विचार करके ही परिणाम तक पहुँचने की ओर स्पष्ट संकेत किया गया है। परिणामवादी लोग परिणाम की किसी भी प्रकार से प्राप्ति करने के उपरान्त 'वीर भोग्या वसुन्धरा' का भी उद्घोष करते दिखाई देते हैं। 'अहं भूमिमददामार्याय' के वैदिक वाक्य का भी स्मरण करते हैं। 'जो जीता वही सिकन्दर' का नारा लगाकर विजयोत्सव मनाते हैं।

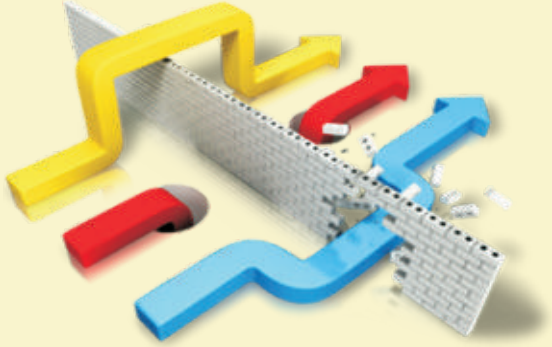

पद्धति विधि प्रक्रिया, सरणि और पथ को ध्यान में रखकर चलने वाले जन साधन शुचिता को महत्व देते हैं। वे इस बात पर विशेष बल देते हैं कि परिणाम की प्राप्ति में किसी के स्वार्थ को नष्ट तो नहीं किया है किसी की हिंसा तो नहीं हुई है, किसी पर अत्याचार तो नहीं किया गया है, किसी को अपमानित और तिरस्कृत करके तो सफलता नहीं प्राप्त हुई है, किसी के साथ छल और छद्म का सहारा लेकर अन्याय तो नहीं किया है, किसी पर अपनी विद्वता की धाक जमाकर वंचना तो नहीं की है। वे परिणाम पर दृष्टि रखते हुए भी उचित और स्वस्थ पद्धति पर ही चलकर सफलता की आशा करते हैं। वे अपनी कार्यपद्धति से सबका विश्वास जीतते हैं। उनकी गति मन्द हो सकती है परन्तु दृष्टि स्थायी सफलता की ओर ही होती है। वे यश रूपी प्रतिष्ठा के परिणाम को प्राप्त करने में अधिक रुचि रखते हैं। उनके लिए अहिंसित और अनवद्य प्रक्रिया ही परिणाम है। वे निष्कलंक कीर्ति की धर्मध्वजा को ही परिणाम के रूप में देखते हैं। पद्धतिवादी हृदय प्रधान होते हैं। स्वामी दयानन्द ने मुसलमानों के समान विध्वंसक पद्धति का मूर्तियों के भंजन करने में विश्वास न करते हुए विचारों के खण्डन करने में अपनी सम्पूर्ण शक्ति प्रदर्शित की है। महात्मा गाँधी का, महावीर स्वामी का, गौतम बुद्ध का और भी भारत की सन्त परम्परा का सूक्ष्म अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि ये सब पद्धति पर, कार्य करने की प्रक्रिया पर अधिक बल देते हुए दिखाई देते हैं। हमारी सनातन अविच्छिन्न ऋषि परम्परा में भी एक भी ऋषि परिणामवादी दिखाई नहीं देता है। बुद्धि का हृदय पर अंकुश रहना आवश्यक है और हृदय का बुद्धि पर आरोहण उदात्त दृष्टि का परिचायक है। ऋषियों की कार्य पद्धति हृदयप्रधान होते हुए भी ज्ञान-विज्ञान और मस्तिष्क से सुसम्पन्न होती है। बुद्धिप्रधान व्यक्तियों में हृदय की संवेदन शीलता अन्दर ही अन्दर उमड़ती-घुमड़ती बाहर निकलने के लिए छटपटाती हुई दम तोड़ देती है तथा बुद्धि का परिणामवादी तीव्र वेग उसे बाहर नहीं आने देता। इसलिए परस्पर पूरक होते हुए भी बुद्धि पुष्प में सौन्दर्य के समान है, तो हृदय सुगन्ध पुष्प सर्वतोग्राह्य नहीं होता तथा सौन्दर्य के बिना पुष्प अपूर्ण और अधूरा लगता है। ठीक वैसे ही प्रधानता को बुद्धि की कुशलता से अनुप्राणित करना परम आवश्यक है। अतः सम्यक् सरणि का अनुसरण करने में परिणाम की आभा है, चमक है तथा शोभा है और है, अन्यों के लिए अनुकरणीय आदर्श।

- प्राध्यापक, संस्कृत राजकीय महाविद्यालय
बयाना, भरतपुर

अंधविश्वास के मकड़जाल में भटकता मानव

अर्जुनदेव चड्ढ़ा

आधुनिक ज्ञान विज्ञान के युग में कभी-कभी ऐसी घटनाएँ हो जाती हैं जो कि व्यक्ति को सोचने पर मजबूर कर देती हैं कि वह किस युग में जी रहा है। यह घटना राजस्थान के कोटा शहर की है जहाँ २०१२ में भीलवाड़ा से इलाज के लिए लायी गई एक महिला का कोटा में निधन हो गया। निधन के एक वर्ष पश्चात् पूरा परिवार परिजनों के साथ बस भर कर कोटा आया और वे महिला की कोटा में जिस स्थान पर मृत्यु हुई वहाँ कुछ टोने-टोटके करने लगे। लोगों ने पूछा तो उन्होंने बताया कि उनको किसी पंडित ने कहा है कि घर में जो परेशानियाँ चल रही हैं उसका कारण मृतका की आत्मा का भटकना है, इसलिए भटकती हुई आत्मा को साथ लेने आए हैं।

यह तो एक उदाहरण मात्र है ऐसी अनेकों घटनाएँ, तथ्य, विज्ञान और दर्शन शास्त्र के तर्कों से परे प्रतिदिन समाज में देखने तथा सुनने को मिलती हैं। यह देखकर आश्चर्य होता है कि आज के इस वैज्ञानिक युग में भी मानव अन्धविश्वासों के घोर अंधेरे में फँसा पड़ा है। आज भी कुछ स्वार्थी पाखण्डियों द्वारा फैलाये जा रहे मिथ्या प्रचार के कारण शिक्षित होते हुए भी लकीर का फकीर बना हुआ है जबकि धार्मिक ग्रन्थ किसी भी प्रकार के टोने-टोटके तथा अन्धविश्वास का समर्थन नहीं करते।

वशीकरण, तांत्रिक क्रियाएँ, गंडे-ताबीज, भूत-प्रेत की कपोल कल्पना, धातु प्लास्टिक से बने यंत्र; न जाने अंधविश्वास किन-किन रूपों में लोगों के मन में घर किए हुए है।

कुछ चालाक व्यक्ति मानव-मन में व्याप्त इसी भय नामक कमजोरी का फायदा उठाकर, कभी नारियल को मंत्र से फोड़कर दिखा, नीम्बू में खून दिखा, सफेद सरसों के दानों को काला कर, रंगीन फूलों को रंगहीन कर, भभूत प्रकट कर खिला, बिना किसी साधन के जल छिड़क कर दीपक जला, आत्माओं से बातें कर व ऐसे ही अनेक माध्यमों से लोगों को भयभीत कर अपना उल्लू सीधा करते नजर आते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि यह सब होता है धर्म के नाम पर। धर्म की आड़ में फल फूल रहे इस अंधविश्वास के धंधे में कितने ही लोग अपनी जीवन भर की कमाई डुबाते नजर आते हैं। और अंत में मिलता है उन्हें सिर्फ धोखा तथा शारीरिक, मानसिक यंत्रणा। जिन शारीरिक व मानसिक परेशानियों से बचने के लिए वे तंत्र मंत्र के इस मार्ग को चुनते हैं अंत में स्वयं को ठगा हुआ महसूस करते हुए लुटे-पिटे तथा हताश दिखाई पड़ते हैं। और कई बार स्थिति इतनी विकट हो जाती है कि व्यक्ति को आत्महत्या तक करनी पड़ती है।

इन अन्धविश्वासी अनुष्ठानों की मार का सामना सर्वाधिक महिलाओं को करना पड़ता है। कभी भूत-प्रेत कभी चुड़ैल तथा कभी डायन; न जाने कितने रूपों में उन्हें प्रताड़ित होना पड़ता है। यहाँ तक कि अनुष्ठानों की आड़ में शारीरिक शोषण का भी सामना करना पड़ता है।

सत्य तो यह है कि इन सभी अन्धविश्वासी कर्मकाण्डों का कोई भी धार्मिक कारण नहीं है। वेद, उपनिषद्, दर्शन आदि धर्म शास्त्रों में इनका कोई उल्लेख नहीं है। केवल मानव मन में व्याप्त भय तथा सांसारिक कारणों से जीवन में आने वाली कठिनाइयों का फायदा उठाकर कुछ लोगों ने मनुष्यों के शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक शोषण का एक तंत्र विकसित कर लिया है जिसे चालाकी से धार्मिक रूप दे दिया गया है।

वेद, उपनिषिदों तथा दर्शन में किसी भी रूप में आत्माओं के भटकने, उनसे वार्तालाप करने आदि का कोई भी उल्लेख नहीं है। किन्तु इन ग्रन्थों के ज्ञान से अन्जान व्यक्ति केवल धार्मिक अन्धविश्वास के नाम पर लुटता चला जाता है।

गीता में स्पष्ट लिखा है कि जैसे व्यक्ति पुराने कपड़े

बदलकर नये कपड़े पहन लेता है उसी प्रकार आत्मा एक शरीर को छोड़कर ईश्वर की व्यवस्था अनुरूप नये शरीर को धारण करती है। आधुनिक विज्ञान भी इसी बात का समर्थक है। वास्तव में अंधविश्वास के इस धंधे से रोजी रोटी कमाने वाले इन चालाक लोगों ने विज्ञान को ही अपना माध्यम बनाया हुआ है। विज्ञान की रासायनिक क्रियाओं, विधियों का प्रयोग कर ये लोग चमत्कार आदि दिखाकर लोगों के मन में अपनी पैठ जमा लेते हैं। और बाद में ऐसे लोगों का शोषण करते हैं। उदाहरण के रूप में परमैंगनेट ऑफ पोटास को ग्लिसरीन पर गिराकर आग प्रकट करना, कटहल के दूध लगे चाकू से नीम्बू काटने पर खून टपकना दिखाना, नौसादर तथा चूने के मिश्रण को सुँघा कर बेहोशी दूर करना तथा बिच्छू के डंक का उपचार करना। फिटकरी के घोल से पहले लिखना जो दिखाई न दे फिर बाद में उस पर चुकन्दर के रस का प्रयोग कर उसे दिखाना, जैसे अनेकों प्रकार के तंत्र मंत्र, जादू टोने-टोटके के पीछे विज्ञान तथा उसकी विधियाँ छुपी हुई हैं न कि कोई रहस्यमयी शक्ति।

इसलिए सर्वप्रथम तो मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपने परिवार में दुःख तकलीफ आने पर उसके कारणों को खोज कर निवारण करे। धार्मिक अन्धविश्वास से बचे, वेद उपनिषद् आदि ग्रन्थों का स्वाध्याय करे। जिससे धर्म का सत्य ज्ञान हो सके तथा यदि कोई चालाक तंत्र मंत्र के नाम पर भोले-भाले लोगों को ठग रहा हो तो विज्ञान के माध्यम से बेनकाब करे। क्योंकि वेद कहता है **'अंधन्तमः प्र विशन्ति येऽअविद्यामुपासते'** जो अविद्या में घिरे रहते हैं वे ही अन्धविश्वास रूपी अन्धकार में गिरते हैं इसलिए ज्ञान के माध्यम से समस्याओं का निवारण करे न कि तंत्र मंत्र तथा पाखण्ड से।

स्मरण रहे कि लगभग आठ माह पूर्व भी कोटा के महाराव भीमसिंह अस्पताल में इसी प्रकार के पाखण्ड का पूरा नाटक किया और ढोंगियों ने आत्मा को पकड़ने का दावा किया। मैंने तब और अब हुए इन अन्धविश्वासों को समाचार पत्रों में पढ़ा तो उसी समय कोटा कलक्टर को फोन कर ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति न हो ऐसा आग्रह किया। वे व्यस्त यातायात रोककर पाखण्ड करते रहे और आमजन परेशान होता रहा और प्रशासन सोता रहा। शासन-प्रशासन पुलिस को इस प्रकार के आडम्बरों को तुरन्त रोकने के आदेश जारी करने का निवेदन किया।

– जिला प्रधान आर्य समाज जिला सभा
४-प-२८ विज्ञाननगर कोटा ३२४००५
मोबाइल ०९४१४१८७४२८

सत्यार्थप्रकाश पहेली-१८

रिक्त स्थान भरिये- सत्यार्थप्रकाश जैसे महान् ग्रन्थ का स्वाध्याय कीजिए। (तृतीय समुल्लास पर आधारित)- पुरस्कार प्राप्त करिये

१ च		१	श	१		२	णा	२	म	२	
३ ज्ञा	३				४ चौ		४		४ र्ष		
५	ज		६	६ ष		७ य		७	वी	७	

संकेत (बाएँ से दाएँ) ऊपर से नीचे न भरें।

१. यज्ञवेदी ऊपर जितनी चौड़ी हो उसके नीचे का क्या परिमाण है?
२. मन आदि इन्द्रियों के दोष किससे निर्मल होते हैं?
३. प्राणायाम से किसका प्रकाश होता है?
४. कनिष्ठ ब्रह्मचर्य कितने वर्ष का होता है?
५. अनिवार्य शिक्षा किससे क्रियान्वित होती है?
६. प्रतिष्ठा से किसके तुल्य डरा करे?
७. ब्राह्मण अन्य तीनों वर्णों का क्या करा सकता है?

सत्यार्थ प्रकाश पहेली- १६ का सही उत्तर

१. तृतीय २. आभूषण ३. आठ ४. देहाभिमान ५. दुष्टाचारी ६. एकान्त ७. दो कोश ८. पुरुष

सहायक ग्रन्थ- सत्यार्थप्रकाश, पुरस्कार- "अनूठी, अद्भुत पत्रिका सत्यार्थ सौरभ" एक वर्ष तक निःशुल्क, घर बैठे प्राप्त करें।

कार्यालय में हल की हुई पहेली प्राप्त करने की अन्तिम तिथि- १५ अगस्त २०१५

समाचार

सूर्य नमस्कार सभी के लिए

२१ जून को होने वाले आसनों में सूर्य नमस्कार आसन पर हिन्दू धर्म के इतर आस्था रखने वाले लोगों को एतराज है। यह एतराज मात्र गलतफ़हमी के कारण है। सूर्य नमस्कार आसन में साधक प्रातः काल सूर्य की ओर मुँह करके यह आसन करता है ताकि प्रातः काल के सूर्य की रश्मियों से साधक को तेज मिले, ताकत मिले। प्रातःकालीन सूर्य की किरणों में विशेष ऊर्जा होती है, जिसे हम उसकी ओर मुख करके प्राप्त करते हैं। ऐसा करने से हमें विटामिन-डी के अतिरिक्त अनेक पौष्टिक तत्त्व भी प्राप्त होते हैं, जो हमारे शरीर व मन के लिए अत्यन्त लाभदायक होते हैं। यह योगासन करने से हमारे शरीर की अनेक बीमारियाँ समाप्त हो जाती हैं। इस योगासन को सूर्य की उपासना मानना एकदम गलत है। हाथ जोड़ने से हमारे हाथों की ऊर्जा संतुलित होती है तथा एक्यूप्रेशर भी होता है। अतः यह आसन पूर्णतया वैज्ञानिक क्रिया है, कोई धार्मिक कर्मकाण्ड नहीं। सूर्य तो स्वयं एक जड़ वस्तु है, उसे कोई दैवी शक्ति अथवा ईश्वर मानना अज्ञानता है। अतः इस आसन को किसी भी मजहब का व्यक्ति कर सकता है। इस आसन का किसी भी मजहब से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह आसन तो ३००० वर्ष पूर्व पतंजलि ऋषि द्वारा रचित पुस्तक 'योग दर्शन' से चला आ रहा है। तब न तो मुस्लिम सम्प्रदाय का उदय हुआ था न ही हिन्दू शब्द का जन्म हुआ था। अतः योगासन किसी मजहब की बपौती नहीं है। इसे जो भी व्यक्ति करेगा वो फल पायेगा, रोग मुक्त होगा, स्वस्थ होगा। योगासनों के इतने सारे लाभ हैं इसीलिए संयुक्त राष्ट्र ने इसे समस्त विश्व के लिए अनुकरणीय बना दिया है।

– संदीप आर्य, सान्ताक्रुज, मुम्बई

अंधेरे में जो बैठे है नजर उन पर भी कुछ डालो

भारत-नेपाल के परिक्रमावासी स्वामी प्रवासानन्द सरस्वती ने १९६३ से २०१३ तक निरन्तर ५० वर्ष साईकिल, मोटर साईकिल, रेल, बस तथा पैदल या जहाँ जो भी साधन मिला, उससे यात्रा की। अब भी ९० वर्ष की उम्र में रेल-बस से यात्रा चल ही रही है। स्वास्थ्य एकदम से ठीक है। यात्रा, यात्रा, यात्रा निरन्तर चल रही है। यह यात्रा कहाँ, कब, क्यों, कैसे समाप्त हो जाये, कहा नहीं जा सकता। आर्यसमाज में अनेक दानी महानुभावों और पुरस्कार प्रदाताओं ने स्वामी जी के योगक्षेम पर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया। उनसे निवेदन है कि स्वामी प्रवासानन्द जी सरस्वती के लिए फिक्स डिपोजिट के रूप में भारतीय स्टेट बैंक, ऑन-लाईन खाता नं. में ३१०, ६०१, ६९७, ९४ (ऐसे कर्मठ संन्यासी को भी पुरस्कार प्रदान कर) इनके खाते में धन जमा करें। उतना ही ब्याज मिलेगा। जिससे यात्रा कई स्थानों पर रुक-रुक कर न करके, रेल से रिजर्वेशन से ही जाते-आते आराम से होती रहेगी, जब तक जीवन है।

– मनीष शर्मा, अजमेर

दयानन्द वाटिका में सामवेद पारायण महायज्ञ का आयोजन

दिनांक २४ मई से २७ मई २०१५ तक छोटीसादड़ी स्थित दयानन्द वाटिका में श्री हीरालाल-मीरा शर्मा द्वारा सामवेद पारायण महायज्ञ का आयोजन किया गया। कार्यक्रम में डा. सोमदेव जी शास्त्री, मुम्बई, प्रसिद्ध भजनोपदेशक पं. नरेशदत्त, नरेन्द्र बिजनौर उ.प्र., आचार्या कु. सीमा जी, मीना कुमारी, धर्मिष्ठा चित्तौडगढ़ एवं मथुरा से रामप्यारी आदि थे। पौत्रों (तन्मय, विशेष, राधव) को यज्ञोपवीत संस्कार किया गया।

– हीरालाल शर्मा, छोटी सादड़ी

न्यास के संस्थापक अध्यक्ष

(स्मृतिशेष) पूज्य स्वामी तत्त्वबोध सरस्वती जी

की ११वीं पुण्य स्मृति में

दिनांक २६ जुलाई २०१५ रविवार को

'माता लीलावन्ती वैदिक संस्कृति प्रशिक्षण केन्द्र',

नवलखा महल, गुलाबबाग, उदयपुर

में भव्य कवि सम्मेलन का आयोजन

प्रमुख सान्निध्य

राष्ट्रीय कवि डॉ. सारस्वत मोहन मनीषी

समय

सायं ५ से ८ बजे तक

अधिकाधिक संख्या में अवश्य पधारें।

निवेदक

भवानीदास आर्य
मन्त्री-न्यास

नारायण लाल मित्तल
कोषाध्यक्ष-न्यास

डॉ. अमृतलाल तापड़िया
संयोजक

एवं समस्त न्यासीगण

हलचल

डी.ए.वी में 'वैदिक चेतना शिविर का समापन समारोह

बच्चों में वेदों के प्रति रुचि जागृत करने एवं यज्ञ का प्रशिक्षण देने के उद्देश्य से, ५ दिवसीय वैदिक चेतना शिविर का आयोजन किया गया। कार्यक्रम की मुख्य अतिथि रहीं डॉ. इन्दु तनेजा, प्रसिद्ध शिक्षाविद्, भूतपूर्व प्राचार्या, जियालाल शिक्षक प्रशिक्षण कॉलेज, अजमेर एवं मैनेजर डीएवी पब्लिक स्कूल कोटा। कार्यक्रम की अध्यक्षता अर्जुनदेव चड्ढा, प्रधान आर्य जिला सभा कोटा ने की। योग व लाठी चलाने का प्रशिक्षण योगाचार्य रमेश चन्द्र आर्य ने दिया।

शिविर की मुख्य अतिथि डॉ. इन्दु तनेजा ने कहा कि बच्चों को बचपन में दिए गए संस्कार राष्ट्र का भविष्य तय करते हैं अतः शिक्षकों को अपने आचरण से बच्चों को शिक्षित करना चाहिए।

– सरिता रंजन गौतम, प्राचार्या

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के १३-१४ सितम्बर, २०१४ को सम्पन्न हुए अधिवेशन में सार्वदेशिक सभा के विभिन्न कार्यों को गति प्रदान करने हेतु अनेक समितियाँ गठित की गई थीं। स्वामी सोम्यानन्द सरस्वती, स्वामी आर्येशानन्द सरस्वती को गौ-संवर्द्धन समिति का सदस्य नियुक्त किया है। – स्वामी आर्येशानन्द, पिण्डवाड़ा सिरोही

कवि जब्बार की रचना राष्ट्रीय संग्रहालय में स्थापित होगी

देश प्रदेश के ५० इतिहासकारों, साहित्यकारों की 'महाराणा प्रताप' विषय पर विचार गोष्ठी के बाद महाराणा प्रताप राष्ट्रीय संग्रहालय हल्दी घाटी में कवि अब्दुल जब्बार की इस युद्ध से जुड़ी रचना 'हल्दी-घाटी' को मुम्बई की सामाजिक संस्था 'राजेन्द्र सूरी युवा-मंच' हजारों रुपये खर्च कर विशाल स्क्रीन पर अंकित कर संग्रहालय में भीनमाल के निवासी और महाराणा प्रताप के प्रबल पुजारी उद्योगपति रमेश वर्द्धन, अरुणावर्द्धन के कर कमलों द्वारा संचालक मंडल को समर्पित की जायेगी तथा उसी समय संग्रहालय के सभागार में स्थापित की जायेगी। जिसे पढ़कर पर्यटक एवं युवावर्ग इस राष्ट्र धर्म की लड़ाई के सभी पहलुओं की जानकारी लेकर देशप्रेम, भाईचारा राष्ट्र रक्षा की प्रेरणा ले सकेंगे।

इस राष्ट्रीय महाराणा प्रताप संग्रहालय के संस्थापक डॉ. मोहन श्रीमाली ने इस अवसर पर कहा कि कवि जब्बार की यह रचना अब राष्ट्रीय धरोहर हो गई है। हमें इस साधारण से व्यक्ति पर गर्व है जो असाधारण कवि है जो अपनी कलम के बल पर राष्ट्रीय एवं साम्प्रदायिक एकता सद्भावना का प्रतीक है। जिसने देश प्रदेश को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान सम्मान दिलाया।

– रामेश्वर 'राम', चित्तौड़गढ़, मो.नं. ६४१४१०६१८१

भूकम्प पीड़ितों को आर्य समाज हिरण मगरी द्वारा सहयोग राशि भेंट

गत दिनों नेपाल में आये विनाशकारी भूकम्प पीड़ितों के सहयोग हेतु आर्यसमाज, हिरणमगरी, उदयपुर द्वारा १५ हजार रु. का चेक प्रधानमंत्री राहत कोष में भेंट किया। आर्यसमाज के वरिष्ठ संरक्षक सदस्य डॉ. अमृतलाल तापड़िया, प्रधान भंवरलाल आर्य, मंत्री श्रीमती ललिता मेहरा, उप प्रधान कृष्ण कुमार सोनी आदि प्रतिनिधि मण्डल के सदस्यों ने उदयपुर जिला कलेक्टर श्री रोहित गुप्ता से भेंट कर उक्त राशि का चेक दिया।

प्रतिस्वर

सत्यार्थ सौरभ के मई २०१५ के अंक के अन्तर्गत Three thousand stitches- श्रीमती सुधामूर्ति के इस लेख को स्थान देकर आपने एक प्रशंसनीय कार्य किया है। निवेदन है कि ऐसे ही प्रेरक, उपयोगी, सामयिक एवं आर्यसमाज के उद्देश्यों से युक्त लेखों को आप स्वरुचि लेकर खोज करके इस सत्यार्थ सौरभ में स्थान देते रहियेगा ताकि यह पत्रिका अपनी उपयोगिता एवं उद्देश्य की ओर बढ़ सके। साथ ही हम सबके लिए प्रेरणादायी बनी रहे। वर्तमान में आर्यसमाज, समाज से अलग होकर गतिहीन हो गया है। ऐसे लेख आर्यों के लिए प्रेरक होंगे! धन्यवाद।

– प्रेमचन्द्र शर्मा, लखनऊ (उ.प्र.)

श्रद्धेय अशोक जी आर्य, सादर नमस्ते। अत्र कुशल तत्रास्तु आपकी कुशलता के लिये सर्व शक्तिशाली परमात्मा का आशीर्वाद सदा अवश्य मिलता रहेगा, ऐसी आशा प्रत्येक आर्य समाजी करता रहेगा।

आपका सत्यार्थ सौरभ थोडे ही समय में प्रचार-प्रसार और अपने सुन्दर कलेवर में सबका प्रिय व लोकप्रिय स्थान ले चुका है।

– पुरुषोत्तमदास वरि. उपप्रधान, कृष्णपोल बाजार, जयपुर

आर्य समाज विज्ञाननगर, कोटा के चुनाव संपन्न

आर्य समाज विज्ञाननगर के वार्षिक चुनाव सम्पन्न हुए। चुनाव अधिकारी हरिदत्त शर्मा के सान्निध्य में सर्वसम्मति से जे.एस दुबे को प्रधान व राकेश चड्ढा को मंत्री व डॉ. किशोरीलाल दिवाकर को कोषाध्यक्ष निर्वाचित किया गया।

– राकेश चढ्ढा, मंत्री, आर्य समाज विज्ञाननगर, कोटा

वैदिक योग प्रशिक्षण शिविर प्रथम स्तर

वैदिक साधना आश्रम तपोवन, नालापानी देहरादून में २२ फरवरी सायंकाल से प्रारम्भ होकर २ मार्च प्रातः को समाप्त होने वाला क्रियात्मक योग प्रशिक्षण शिविर अत्यन्त सफल रहा। यह शिविर आचार्य आशीष जी दर्शनाचार्य के मार्गदर्शन में सम्पन्न हुआ। दैनिक व्यवहार में मन को चिन्ता, तनाव से रहित कर शान्त व समता में बनाये रखना किस प्रकार से सम्भव हो सकता है, इसका प्रशिक्षण शिविरान्तर्गत दिया गया। – दर्शन कुमार अग्निहोत्री

उद्गीथ साधना, राष्ट्ररक्षा स्थली हिमाचल के आँचल में

२ जून, मंगल से रविवार ७ जून तक राष्ट्रीय सन्त आचार्य श्री आर्य नरेश जी के सान्निध्य में 'प्रभु भक्ति, देश भक्ति, संस्कारी व्यक्ति' निर्माण हेतु निशुल्क चेतना शिविर लगाया गया। – ग्राम डोहर, त. राजगढ

सत्यार्थ प्रकाश पहेली - १६ के विजेता

सत्यार्थ प्रकाश पहेली के संदर्भ में हमें उत्साहजनक प्रतिक्रियाएँ प्राप्त हो रही हैं। **सत्यार्थ प्रकाश पहेली- १६** के चयनित १० विजेताओं के नाम इस प्रकार हैं- श्री नारायण सिंह कडवासरा, बीकानेर (राज.), वीणा यादव, बीकानेर (राज.), श्रीमती सुभद्रा शर्मा, विजयनगर (राज.), श्री बाबा राधेश्याम दास, नेमदार; नवादा (बिहार), श्री प्रेमचन्द शर्मा, लखनऊ (उ. प्र.), श्री बालकेश्वर शास्त्री, यमुनानगर (हरियाणा), श्री रामपाल आर्य, यमुनानगर (हरियाणा), श्री जीवन लाल आर्य , दिल्ली, श्री प्रह्लाद सिंह वर्मा, आष्टा; सिहोर (म. प्र.), श्री अनन्त थाटी, ओड़ीसा। इनको स्वयं को अथवा इनके द्वारा नामित भाई/बहिन को १ वर्ष तक सत्यार्थ सौरभ पत्रिका निःशुल्क भेजी जावेगी।

HEALTH IS WEALTH

आधुनिक जीवन शैली की तेज रफ्तार एवं भागदौड़ भरी जिन्दगी में सेहत का विषय बहुत पीछे रह गया है और नतीजा यह निकला कि आज हम युवावस्था में ही ब्लड प्रेशर, डायबिटीज, हृदय रोग, कोलेस्ट्रॉल, मोटापा, गठिया, थायरॉइड जैसे रोगों से पीड़ित होने लगे हैं जो कि पहले प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था में होते थे और इसकी सबसे बड़ी वजह है खान पान और रहन सहन की गलत आदतें। आओ हम सेहत के निम्न नियमों का पालन करके खुद भी स्वस्थ रहें तथा परिवार को भी स्वस्थ रखते हुए अन्य लोगों को भी अच्छे स्वास्थ्य के लिए जागरूक करें ताकि एक स्वस्थ एवं मजबूत समाज और देश का निर्माण हो। क्योंकि कहा भी गया है- पहला सुख निरोगी काया।

भोजन हो संतुलित- घी, तेल से बनी चीजें जैसे पूड़ी, पराँठे, छोले भटूरे, समोसे, कचौड़ी, जंकफूड, चाय, कॉफी, कोल्डड्रिंक का ज्यादा सेवन सेहत के लिए घातक है। इनका अधिक मात्रा में नियमित सेवन ब्लडप्रेशर, कोलेस्ट्रॉल, मधुमेह, मोटापा एवं हार्टडिजीज का कारण बनता है तथा पेट में गैस, अल्सर, एसीडिटी, बार-बार दस्त लगना, लीवर खराब होना जैसी तकलीफें होने लगती हैं। इनकी बजाय खाने में हरी सब्जियाँ, मौसमी फल, दूध, दही, छाछ, अंकुरित अनाज और सलाद को शामिल करना चाहिए जो कि विटामिन, खनिज, लवण, फाइबर,एव जीवनीय तत्त्वों से भरपूर होते हैं और शरीर के लिए बहुत फायदेमन्द होते हैं।

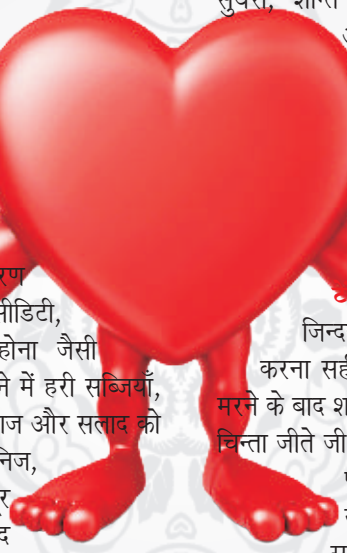

चीनी एवं नमक का अधिक मात्रा में सेवन न करें, ये डायबिटीज, ब्लडप्रेशर, हृदय रोगों के कारण हैं।

बादाम, किशमिश, अंजीर, अखरोट आदि मेवा सेहत के लिए बहुत लाभकारी होते हैं, इनका सेवन अवश्य करें।

पानी एवं अन्य लिक्विड जैसे फलों का ताजा जूस, दूध, दही, छाछ, नींबू पानी, नारियल पानी का खूब सेवन करें, इनसे शरीर में पानी की कमी नहीं हो पाती। शरीर की त्वचा एवं चेहरे पर चमक आती है, तथा शरीर की गंदगी पसीने और पेशाब के द्वारा बाहर निकल जाती है।

व्यायाम का करें नियमित अभ्यास- सूर्योदय से पहले उठकर पार्क जाएँ, हरी घास पर नंगे पैर घूमें, दौड़ लगाएँ, वाक करें, योग, प्राणायाम करें। इन उपायों से शरीर से पसीना निकलता है। मांस पेशियों को ताकत मिलती है। शरीर में रक्त का संचार बढ़ता है। अनेक शारीरिक एवं मानसिक रोगों से बचाव होता है। दिन भर बदन में चुस्ती-फुर्ती रहती है। भूख अच्छी लगती है। इसलिए नियमित रूप से व्यायाम अवश्य करें।

गहरी नींद भी है जरुरी- शरीर एवं मन को स्वस्थ रखने के लिए प्रतिदिन लगभग ७ घंटे की गहरी नींद एक वयस्क के लिए जरुरी है, लगातार नींद पूरी ना होना तथा बार-बार नींद खुलना। अनेक बीमारियों का कारण बनता है।

अच्छी नींद के लिए ये उपाय करें- सोने का कमरा साफ सुथरा, शान्त एवं एकान्त में होना चाहिए। रात को अधिकतम १०-११ बजे तक सो जाना और सुबह ५-६ बजे तक उठ जाना स्वास्थ्य के लिए अच्छा माना जाता है। सोने से पहले शवासन करने से अच्छी नींद आती है। खाना सोने से २-३ घण्टे पहले कर लेना चाहिए एवं शाम को खाना खाने के बाद २०-२५ मिनट अवश्य घूमें।

कहें बाय-बाय - रोजमर्रा की जिन्दगी में आने वाली समस्याओं के लिए चिन्तन करना सही है, चिन्ता करना नहीं। चिता तो फिर भी मरने के बाद शरीर को जलाती है किन्तु लगातार अनावश्यक चिन्ता जीते जी शरीर को जला देती है। इसलिए तनाव होने पर भाई, बन्धु एवं विश्वासपात्र मित्रों से सलाह मशवरा करें यदि समस्या फिर भी ना सुलझे तो विशेषज्ञों से राय लें।

नशे से रहें बच के- युवा पीढ़ी के लिए कोई सबसे खतरनाक बीमारी है तो वो है नशे के जाल में फँसना। शराब, धूम्रपान, तम्बाकू ये सब सेहत के दुश्मन हैं। किसी भी स्थिति में नशे की लत से बचें। यदि नशे से बचे हुए हैं तो बहुत अच्छा किन्तु, यदि कोई नशा करते हैं तो जितनी जल्दी इससे दूरी बना लें उतना ही अच्छा है। ये ऐसी बीमारी है जो कैंसर और एड्स से भी ज्यादा खतरनाक है और एक साथ कई परिवारों को बर्बाद करती है तथा शारीरिक, मानसिक, आर्थिक एवं सामाजिक प्रतिष्ठा के नाश का कारण बनती है, इसलिए नशे से बचना ही बेहतर उपाय है।

स्वास्थ्य के ऊपर बताये हुए नियमों का पालन अवश्य करें क्योकि कहा भी गया है- 'हैल्थ इज वैल्थ'।

सी- १४६२, अंसल पालम विहार
गुड़गांव (हरि.)

कथा सरित

दूसरों को खिलाने वाला कभी भूखा नहीं रहता

देने से कभी कमी नहीं आती अपितु वृद्धि ही होती है। यज्ञ हमें देने की वृत्ति बनाने की महती प्रेरणा देता है। यज्ञ में हम अग्नि देवता को जो कुछ भेंट करते हैं अग्निदेव सब हमको ही देते हैं किन्तु बढ़ाकर देते हैं। खेत में हम कुछ दाने देते हैं वह भी हमें 'अनेक' होकर मिलते हैं। अतः सदैव देने की प्रवृत्ति रखनी चाहिए।

दूसरों को खिलाने वाला कभी भूखा नहीं रहता। इसकी पुष्टि में एक प्रेरक प्रसंग यहाँ प्रस्तुत है।

मगध के प्रतापी राजा के दस पुत्र थे। प्राचीन परम्परा के अनुसार बड़े पुत्र को राजगद्दी सौंप कर उसे राजा घोषित किया जाता था। राजा ने अपना उत्तराधिकारी चुनने के लिए एक परीक्षा लेने का निर्णय किया जिससे दसों में से योग्यतम पुत्र को ही राजा बनाया जा सके। वह चाहते थे कि बुद्धिमान, नीतिमान पुत्र ही उत्तराधिकारी बने जिससे राज्य का सुसंचालन होता

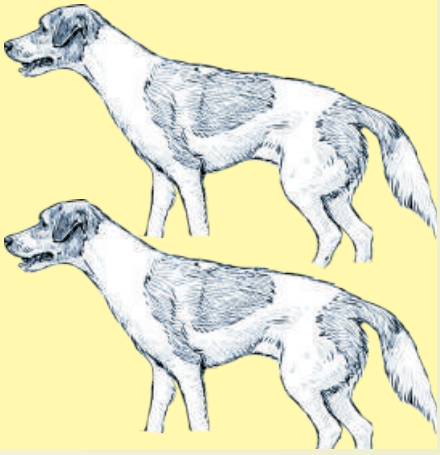

रहे। एक दिन उन्होंने सभी पुत्रों को इकट्ठा कर कहा कि तुममें से उत्तराधिकारी कौन होगा उसके लिए तुम सबकी परीक्षा ली जायेगी। सबने स्वीकृति दी तब राजा ने सब पुत्रों को भोजन के लिए एक साथ बिठाया। भोजन की थालियाँ उनके सामने रख दी गईं। राजकुमार जैसे ही भोजन करने वाले थे कि शिकारी कुत्ते छोड़ दिए गए। खूँखार कुत्तों को भौंकते हुए कमरे की ओर आते देखकर राजकुमारों को पसीना आ गया। एक-एक करके भोजन की थालियाँ छोड़कर भाग निकले। छोटा राजकुमार श्रोणिक नहीं भागा। यह अपने आसन पर बैठा भोजन करने लगा। वह भोजन करके हाथ धोकर बाहर निकला। राजा दूसरे कमरे की खिड़की से यह सारा दृश्य देख रहा था।

राजा ने राजकुमारों से पूछा- भोजन ठीक प्रकार से कर लिया। राजकुमार बोले शिकारी कुत्ते कमरे में पहुँचने के कारण हम भोजन न करके भागने को विवश हो गए। केवल छोटा बेटा श्रोणिक कहने लगा पिताजी मैंने तो भरपेट भोजन किया है। पिता ने पूछा शिकारी कुत्तों की विद्यमानता में तुमने भोजन कैसे किया? यदि कुत्ते काट लेते तो तुम क्या करते? वह बोला जैसे ही कुत्ता मेरे पास आता मैं उसके सामने रोटी का टुकड़ा फेंक देता। इस युक्ति से मैंने सब कुत्तों को शान्त कर दिया। मैंने तो पढ़ा था कि जो दूसरों को खिलाता है वह कभी भूखा नहीं रहता। आज मैंने अपने पढ़े का परीक्षण किया। इस नीति वचन ने मेरा मार्गदर्शन किया और मैं सफल हो गया।

राजा ने श्रोणिक को ही अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

साभार- सार्थक जीवन
हितोपदेशक हिन्दी मासिक
राजेन्द्र कुमार गुप्ता

''संन्यासाश्रम''

का चतुर्थ एवं अन्तिम पड़ाव संन्यासाश्रम है।

संन्यास का काल

महर्षि दयानन्द के अनुसार- '७५वें वर्ष पर्यन्त वानप्रस्थ हो के आयु के चौथे भाग में संगों को छोड़ के परिव्राट अर्थात् संन्यासी हो जावे। (सत्यार्थ प्रकाश. ५ समु.)

वर्णाश्रम धर्म के पोषक महर्षि मनु महाराज ने संन्यासी होने के लिए काल का उल्लेख करते हुए लिखा है कि 'जंगलों में आयु का तीसरा भाग अर्थात् अधिक से अधिक २५ वर्ष अथवा न्यून से न्यून १२ वर्ष विहार करके, आयु के चौथे भाग अर्थात् ७० वर्ष के पश्चात् सब मोहादि संगों को छोड़कर संन्यासी हो जावे। (मनु. ६/३३)। परमहंस परिव्राजकोपनिषदः (४/५/१५) में उल्लेख है कि- 'ब्रह्मचर्य समाप्त करके गृहस्थाश्रमादि का अनुष्ठान करके संन्यासी हो जावे।' महर्षि मनु ने विधान किया कि- 'द्विजाति व्यक्ति वानप्रस्थ धर्म का पालन करके और समस्त पाप और कुत्सित कर्मों का क्षय करके पुनः चतुर्थाश्रम अर्थात् संन्यास आश्रम में विधिपूर्वक प्रवेश करे। (मनु. ६/३०)

महर्षि दयानन्द सरस्वती महाराज ने स्वरचित 'संस्कार विधि' में संन्यास ग्रहण करने के काल को जाबाल आदि के अनुसार तीन प्रकार से उपस्थित किया है-

पहला प्रकार- ब्रह्मचर्य पूरा करके गृहस्थ और गृहस्थ हो के वानप्रस्थ, वानप्रस्थी हो के संन्यासी होवे। क्रम संन्यास अर्थात् अनुक्रम से आश्रमों का अनुष्ठान करता-करता वृद्धावस्था में जो संन्यास लेना है उसी को क्रम संन्यास कहते हैं।

दूसरा प्रकार- **'यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेद् वनाद् वा गृहाद्वा'** ब्राह्मण ग्रन्थ के इस आर्ष वाक्य के अनुसार जिस दिन दृढ़ वैराग्य प्राप्त होवे, उसी दिन, चाहे वानप्रस्थ का समय पूरा भी न हुआ हो अथवा वानप्रस्थ आश्रम का अनुष्ठान न करके गृहाश्रम से ही संन्यासाश्रम ग्रहण करें। क्योंकि संन्यास में दृढ़ वैराग्य और यथार्थ ज्ञान का होना ही मुख्य कारण है।

तीसरा प्रकार- **'ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत'**- ब्राह्मण ग्रन्थ के इस आर्ष वचनानुसार यदि पूर्ण अखण्डित ब्रह्मचर्य, सच्चा वैराग्य और पूर्ण ज्ञान विज्ञान को प्राप्त होकर विषयासक्ति की इच्छा आत्मा से यथावत् समाप्त हो जावे, पक्षपात रहित होकर सबके उपकार की इच्छा होवे और दृढ़ निश्चय हो जावे कि मैं मरणपर्यन्त यथावत् संन्यास धर्म का निर्वाह कर सकूँगा तो वह न गृहाश्रम करें, न वानप्रस्थाश्रम करें, किन्तु ब्रह्मचर्याश्रम को पूर्ण करके ही संन्यास को ग्रहण करें।'

आर्य समाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द ने भी इसी प्रमाणानुसार 'संन्यास' ग्रहण किया था। वे स्वयं भी आजीवन ऊर्ध्वरेता तथा आदित्य ब्रह्मचारी रहे। किसी ने जब उनसे पूछा कि क्या काम आपको नहीं सताता, तो स्वामी जी ने उत्तर दिया- 'हाँ वह आता है परन्तु उसे मेरे मकान के बाहर ही खड़ा रहना पड़ता है क्योंकि वह मुझे कभी खाली नहीं पाता। (महर्षि दयानन्द सरस्वतीः जीवन व हिन्दी रचनाएं, लेखक- डॉ. रामप्रकाश आर्य, पृ. २२७) अतः स्पष्ट है कि आश्रम क्रमानुसार अथवा पूर्ण ज्ञान, वैराग्य होने पर कभी भी संन्यास में प्रवेश किया जा सकता है।

संन्यास की अयोग्यता

ब्रह्मचर्य तथा वानप्रस्थ आश्रम तो अनिवार्य हैं। परन्तु गृहस्थ तथा संन्यास, योग्यता सापेक्ष हैं। इनमें, तभी प्रवेश करना चाहिए जब इन आश्रमों में प्रवेश हेतु अपेक्षित योग्यता हो अन्यथा अनर्थ ही होता है। संन्यास आश्रम में निम्न को प्रवेश नहीं करना चाहिए।

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥ - कठ.वल्ली २ मं.२४

जो दुराचार से पृथक् नहीं, जिसको शान्ति नहीं, जिसका आत्मा योगी नहीं, और जिसका मन शान्त नहीं है, यह संन्यास लेके भी प्रज्ञान से परमात्मा को प्राप्त नहीं होता। (स. प्र. ५ समु.)

संन्यास की योग्यता

संन्यास आश्रम में प्रवेश के लिए आवश्यक है कि मनरूपी दर्पण (१) शुद्ध व निर्मल हो, (२) स्थिर हो, (३) आवरण रहित हो (४) ज्ञानरूपी प्रकाश से दीप्त हो और (५) शान्त अर्थात् हर प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त हो। संन्यासी का परम लक्ष्य ब्रह्म प्राप्ति है, अतः उसमें इन सभी गुणों का होना आवश्यक है।

(२) उसे अभीष्ट है कि इन्द्रियों को मन के अधीन, मन को

बुद्धि के अधीन, बुद्धि को आत्मा और आत्मा को परमात्मा के अधीन कर दे।

(३) वह ब्रह्मविद्या में श्रद्धा रखता हो तथा वैराग्यवान् हो।

(४) सकाम कर्मों से प्राप्त होने वाले फलों की असारता या अस्थिरता को जान चुका हो।

(सत्यार्थ भास्कर- पू. स्वामी विद्यानन्द जी सरस्वती)

(५) उसे तीनों प्रकार की एषणाओं का पूर्णतः त्याग कर देना चाहिए।

लोकैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च पुत्रैषणायाश्चोत्थाय भैक्षचर्यं चरन्ति। - शत. १४/५/२/१

'लोकेषणा अर्थात् लोकजन निन्दा करें वा स्तुति करें और प्रतिष्ठा करें वा अप्रतिष्ठा करें तो भी जिसके मन में कुछ हर्ष वा शोक न होय उनको तुच्छ जानके जैसे ये हर्ष-शोक के देने वाले हैं वैसे यथावत् समझके सत्य धर्म मुक्ति अर्थात् सब दुःखों की निवृत्ति और परमेश्वर की प्राप्ति इनमें स्थिर रह के आनन्द में रहे और किसी का पक्षपात अथवा किसी से भय कभी न करे। वित्तैषणा अर्थात् धन की इच्छा और धन की प्राप्ति में प्रयत्न और लोभ कि मुझको धन अधिक होय जितने धनाढ्य हैं उनसे धन की प्राप्ति के वास्ते बहुत प्रीति करे, द्रव्य को बड़ा पदार्थ जान के संचय करना और दरिद्रों से धन के नहीं होने से प्रीति का न करना और धनाढ्यों की स्तुति करना इन सब बातों को छोड़ना उसका नाम वित्तैषणा का त्याग है। पुत्रैषणा अर्थात् अपने पुत्रों में मोह करना वा जो सेवक लोग हैं उनसे मोह अर्थात् प्रीति करना और सुख में हर्ष का होना और दुःख में शोक का होना। (ऐसी वृत्ति को छोड़ देना) पुत्रैषणा का त्याग है। (सत्यार्थ प्रकाश)

जो व्यक्ति पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकेषणा से मुक्त हो जाते हैं कर्मफलों की कामना से दूर हो जाते हैं, उन्हीं व्यक्तियों के आत्मा में अग्नि स्थापना की कल्पना का विधान है।

(६) संन्यासी परमेश्वर देवतावाली इष्टि को करके, हृदय में यह सब-कुछ निश्चय करके, उस इष्टि (सर्वदेशी) में शिखा-सूत्र आदि का होम करके, मनस्वी होकर संन्यास ग्रहण करता है, परन्तु यह संन्यास का अधिकार उन्हीं को है जो पूर्ण विद्वान्, राग-द्वेषरहित तथा सब मनुष्यों पर उपकार की बुद्धि रखते हैं। यह अधिकार अल्पविद्या वालों को नहीं है। संन्यासी का प्राणायाम होम, दोषों से मन तथा इन्द्रियों को रोकना तथा सत्यधर्म का अनुष्ठान ही अग्निहोत्र हैं, किन्तु पहले तीन आश्रमियों के अनुष्ठान करने योग्य जो कुछ भी है, चाहे वह क्रियामय न भी हो तो भी वह सब-कुछ संन्यासियों के लिए नहीं है। सत्योपदेश ही संन्यासियों का ब्रह्मयज्ञ है, ब्रह्म की उपासना करना देवयज्ञ है, विज्ञानियों की प्रतिष्ठा करना पितृयज्ञ है, अज्ञानियों को ज्ञान देना तथा सब प्राणियों पर उपकार करना, उन पर कृपा करना तथा उन्हें पीड़ा न देना ही भूतयज्ञ है और सब मनुष्यों के उपकारार्थ भ्रमण करना, निरभिमानता, सत्योपदेश करने से सब मनुष्यों का सत्कार करना अतिथियज्ञ है। संन्यासियों के लिए इस प्रकार के विज्ञान और धर्मानुष्ठान वाले ही पाँच महायज्ञ होते हैं, ऐसा जानना चाहिए, परन्तु विशेषता यह है कि एक अद्वितीय, सर्वशक्तिमान् आदि विशेषणों से युक्त परब्रह्म की उपासना तथा सत्यधर्म का अनुष्ठान करना- यह सब आश्रमियों में समान है।

सम्पादक- अशोक आर्य

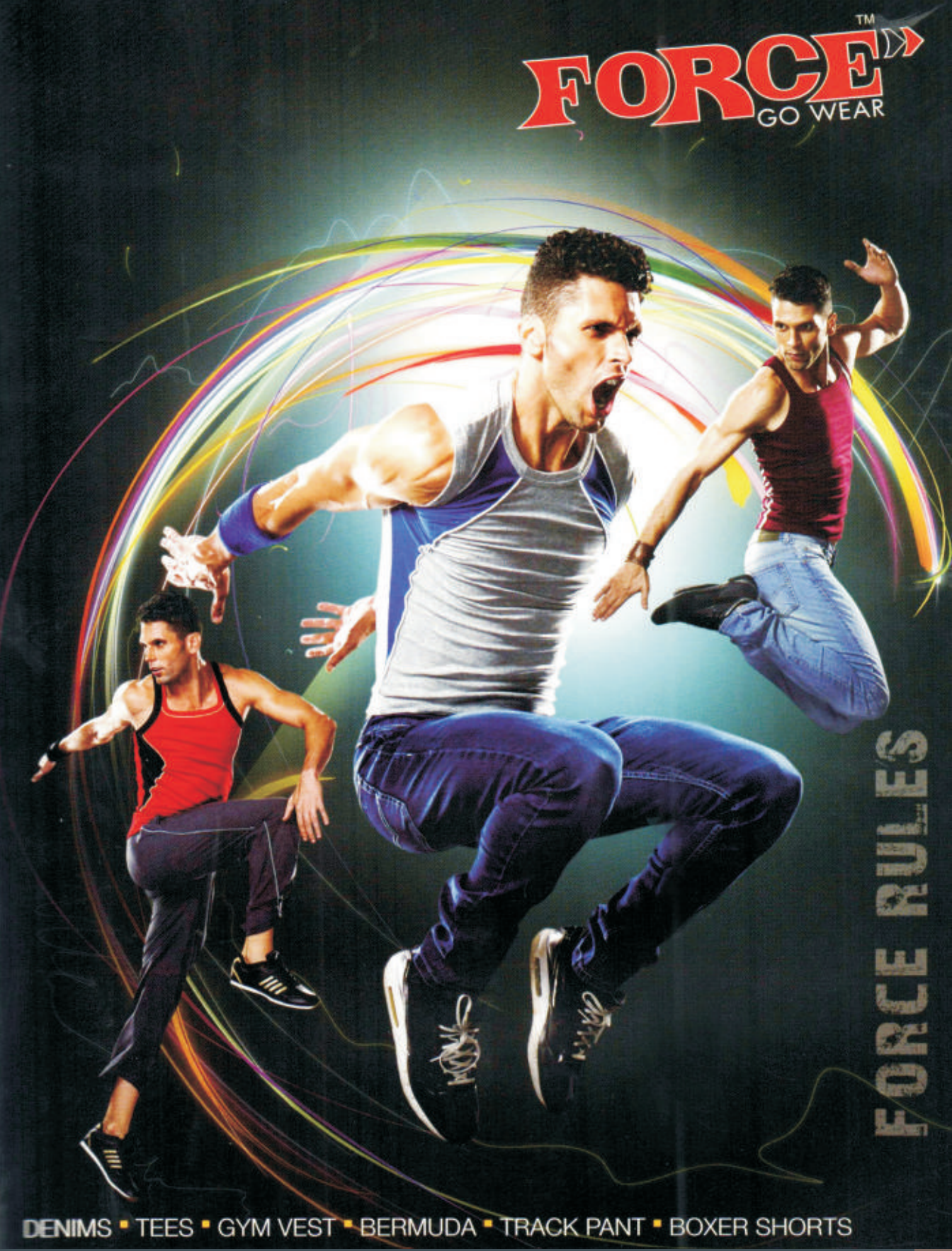
FORCE™
GO WEAR
FORCE RULES
DENIMS ▪ TEES ▪ GYM VEST ▪ BERMUDA ▪ TRACK PANT ▪ BOXER SHORTS

RNI Registration No. RAJHIN/2012/47777 July-2015 Postal Registration No. RJ/UD/29-107/2013-2015

जिस-जिस उत्तम कर्म के लिये माता-पिता और आचार्य आज्ञा देवें, उस-उस का यथेष्ट पालन करो।

सत्यार्थप्रकाश- पृ. ३५

स्वत्वाधिकारी, श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास, उदयपुर की ओर से प्रकाशक, मुद्रक अशोक कुमार आर्य द्वारा चौधरी ऑफसेट प्रा. लि., 11/12 गुरुरामदास कॉलोनी, उदयपुर से मुद्रित तथा कार्यालय श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास नवलखा महल गुलाबबाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, उदयपुर-313001 से प्रकाशित, सम्पादक-अशोक कुमार आर्य